TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182039
UNIVERSAL LIBRARY

रोटियों और लाशों के जुलूस

—लेखक—

स्वरूपकुमार गांगेय

कहानी संग्रह

प्रकाशक—
प्रीतम प्रकाशन गृह
५९ इतवारिया, इन्दौर

Checked 1965

प्रथम संस्करण
सितम्बर
१९५२

मूल्य—डेढ़ रुपया
१॥)

Checked 1969

मुद्रक—
प्रेमकुमार कराहे
शशिकला मुद्रणालय
७ मालगंज, इन्दौर

अनुक्रम	पृष्ठ

१ रोटियों और लाशों के जुलूस	नौ
२ नीली कोठी	सत्रह
३ इक्कीस वर्ष का ईमान	उनतीस
४ नंगी दुनियाँ	इकतालीस
५ तूफान	पचास
६ उन्माद और विभीषिका	अट्ठावन
७ राधा बेटी	छांसठ
८ गोकुल की गाड़ी	बहत्तर
९ प्रकाश नहीं; भूकम्प !!	अस्सी
१० रहस्य की रात	छियासी
११ नीलिमा	निन्नानवे
१२ इन्सानियत की जड़ें	एकसौनो
१३ ज्वालाओं में...!	एकसौचौदह
१४ लक्ष्मी	एकसौतेवीस

प्रचण्ड तूफानों की उद्दाम झंझा और
विभीषक काली रातों में जो कभी भी
विचलित और विकम्पित न हुई; उस
विजयश्री, ममतामयी मां की मधुर
स्मृति में............

स्वरूप कुमार

लेखक

परिचय

(एक निष्पक्ष लघु विवेचना)

एक संवेदनशील लेखक कोरा लेखक ही नहीं होता। वह तो युग निर्माता होता है; युग की संवेदनाओं को ग्रहण कर भविष्य का मार्ग परिष्कृत करनेवाला होता है। उसकी लेखनी युग की प्रतारणाओं से एक ओर जहां पीड़ाओं को प्रकट करती है, वहीं दूसरी ओर वह भविष्य युग के निर्माणकारी तत्वों की अभिव्यक्ति भी।

और संसार में संसार के अपने आने जाने वाले रूप आते जाते रहते हैं; प्रत्येक क्षण उनको उदरस्थ करता रहता है, परन्तु विश्व की महानतम शक्तियां भी बार-बार मानव को रौंद रौंदकर मानवता को पददलित कर कर के भी आज तक मानव और उसकी मानवता को नहीं लील सकीं। मानवता की रक्षा और संवर्द्धन के लिये बार बार विराट ने अपने को संकुचित मानव रूप में प्रकट किया।

युग और भविष्य के संदेश वाहक लेखक और विश्वाधार

मानवता का ऐसा ही कुछ कुछ स्वरूप हुआ करता है। सुकुमार कल्पनाओं और पददलित मानवता की संवेदनाओं को ग्रहण कर, जीवन को उच्च स्तर पर ले जाने वाला ऐसा ही है यह सुकवि, सुलेखक, कलाकार, कहानी लेखक स्वरूप कुमार गांगेय।

इसकी अपनी दुनियां है; अपना कोमल, भावुक हृदय है। इसमें कल्पना है, पर विलासमयी नहीं; इसमें भावुकता है, पर असत्याश्रयी नहीं; इसकी कहानी कला युगनिर्मित और युगानुकूल है, पर स्थायीत्व के तत्वों से भरपूर। और इसमें सबसे बड़ी चीज है जागरूकता, युग द्रष्टासुलेखक के योग्य ईमानदारी। इसलिये लेखक की कहानी कला में टीसें और कसकें हैं, जो मानवता की श्रृंगार हैं, उसे उत्थान देनेवाली हैं। इसने इन्हें बड़ी सावधानी से पिरोया है। 'इक्कीस वर्ष का ईमान' में पाश्चात्य सभ्यता की विडंबना भरी टीस है। 'नंगी दुनियाँ' मानव को मानवता से ढंकने की एक लघु कथा है; तो 'तूफान' पराजित मानवता की दर्द भरी कहानी। 'नीलिमा' पूंजीवादी मनोवृत्ति का मार्मिक चित्र है। तो 'राधाबेटी' मानव हृदय पर हथौड़ों से आघात करने वाली मध्यवित की अवशता से खिलवाड़ करने वाली क्रूर नियति। 'प्रकाश नहीं, भूकम्प' में इस सहृदय कहानी लेखक ने मानवता के उस स्तर को स्पर्श किया है जहां समाज ने उसे कुण्ठित करने का अपना अधिकार साबित करना चाहा है। 'गोकुल की गाड़ी' आधुनिक

नगर निर्मित सभ्यता का दुष्टतापूर्ण ह्रास है।

'इन्सानियत की जड़ें' और 'रोटियों और लाशों के जुलूस' में इसकी कला, मानवता और सहृदयता ने सबसे अधिक निखार पाया है।

यह है स्वरूप कुमार गांगेय और उसकी मर्मस्पर्शिनी कहानी कला के बिखरे कण।

आशा है युगों युगों की अमरता इन्हें अपना चिरसंगी बनायेगी।

इन्दौर

शिखरचंद्र जैन

रोटियों और लाशों के जुलूस

उस दिन एक सपना रात भर मेरे आस-पास चक्कर काटता रहा। मैंने देखा कि गोल-गोल बड़ी बड़ी रोटियों में मनुष्यों के पैर जुड़े हुये हैं। जब मैं आँखें फाड़कर उस जुलूस की लम्बाई नापने लगा, तो मैंने देखा कि मनुष्यों की लाशों का एक दूसरा बड़ा जुलूस सामने से मेरी ओर चला आ रहा है। न जाने कैसा निरर्थक सपना था! अबीर-गुलाल उड़ रहा है, रोटियां छुमकती-ठुमकती चली जा रही हैं और चार चार कन्धों पर लाशें हिलती-झुलती मेरी ओर चली आ रही हैं। ऐसा लग रहा था मानों मैं

रोटियों और लाशों के जुलूस

किसी ऊंचाई पर खड़ा हुआ हूँ। जिस टीले पर मैं हूँ, वह आधे से अधिक पानी में डूबा हुआ है। दूर-दूर तक चारों ओर जल का विस्तार है और जल में ही रोटियों व लाशों का यह भव्य तारतम्य चल रहा है। दोनों जुलूस अविराम चल रहे हैं; किन्तु न तो रोटियां ही दृष्टि से ओझल हो रही हैं और न लाशें ही नजदीक आ रही हैं। चारों ओर धुंधले कोहरे में ऐसा भी लग रहा था मानों जल की विस्तृत नीलिमा को बांधती हुई क्षितिज की रेखाओं पर पंक्तिबद्ध लाखों मनुष्यों का हुजूम इस दृश्य को देख रहा है। कोलाहल है और चीत्कारें भी हैं।

सुबह हुई और सपना टूटा। बचपन में मेरी नानी कहा करती थी कि सुबह सुबह टूटा हुआ सपना झूठा नहीं होता। जाग्रत संसार में उसकी प्रतिछाया अथवा उसी आत्मा conception का परिवर्तित रूप अवश्य कहीं न कहीं घटित होता ही है।

सो ..... पौ फटी। पूर्व की अरुणिमा आँखों को भा गयी। मैं छत पर खड़ा हो गया और एक टक दिनकर के उस रक्ताभ रथ को देखने लगा, जिसके आगे आगे क्रांति का निर्णायक घोष करता हुआ-सा लाल लाल पक्षियों का एक झुंड चला आ रहा था। मैंने देखा कि लगातार बरसात के बाद आज ही पूर्व की लाली में यह निराली छटा बिखर आई है। मन-प्राणों में नवजीवन छलक पड़ा। मुझे ऐसा भी लगा कि सूर्य की प्रत्येक किरण पर युग का

सन्देश लिखा हुआ है। और उन प्रखर किरणों से जो चम-चम चमकते आभा-कण टूट टूट कर संसार पर बरसते हुये से लग रहे हैं, वे मानों भगवान के मन्दिरों की परिक्रमा से लौटते हुये तीर्थ यात्री हैं जो अपने झुलसे हुये देश में चीखते व बिलखते कुटुम्बियों की ओर उद्भ्रान्त मन से उन्मुख हो रहे हैं।

... पश्चिम की ओर गगनांचल में यत्र-तत्र टुकड़े २ बादलों की स्वर्णिम पहाड़ियां आसमान के नीलाभ तट पर छिन्न-भिन्न हो समतल भूमि पर बदलने लगी, और साम्राज्यवादी व पूंजीवादी अर्थशास्त्र के जर्जर पृष्ठों की तरह अपनी स्वर्णिम आभा में गल गल कर अम्बर की श्यामल नीलिमा में विलीन होने लगीं। क्रान्ति का उद्घोषक दल-पक्षियों का झुण्ड विशाल वृक्ष की डाल-डाल बिखर गया और दमकती किरणों का क्रांति-दूत सीमा-रेखा से ऊपर उठ आया।

..... मैं इस तरह मौन प्रस्तर मूर्त्ति की तरह कबतक खड़ा रहूँगा, प्यार से मुझे श्यामा ने पूछा - मेरी पत्नी ने। गीले बालों का लहराता समूह आंचल से निकल, एक ओर कांधे पर बिखर आया था लगता था मानों एक ओर झुकी हुई, घनी काली-सजल-बदली, श्यामा की ममतामयी आँखों से-प्यार के छलकते असीम सागर से नीर खींच खींच बरसने की बेला के निकटवर्ती कोनों में उमड़ती-घुमड़ती चली आ रही हो। मानव का घना उल्लास लहलहाता

यों तड़फ उठा है मैंने पाण्डुलिपि एक ओर रख दी और उससे, इस असामयिक विकृति का कारण पूछने के लिये जूझ पड़ा। आँसू हाँ उसकी आँखें पानी से झल-झला उठीं, मुस्कानों की दीवारों से रुका हुआ व्यथा का दरिया बांध तोड़-तोड़ कर भटक चला मनमानी दिशाओं में। ...

श्यामा की निबन्ध केश-राशि मुक्त वायु में लहराने लगी, किन्तु वह स्वयं पाषाणी-प्रतिमा की तरह जड़ हो गई।

... आँसू रुके और आँखें दीप्त हो उठीं। कुमार ने कहा "अभी लाशों का एक लम्बा जुलूस निकलने वाला है। तुम जानते हो मेरे दफ्तर में एक बंगाली बाबू काम करते थे। यहां भी आते थे, कई बार हमने एक साथ बैठ कर इसी छतपर चाय पी है।"

"हां हां तुम्हारा मतलब बेनर्जी से है, जिन्हें हम उनपचास रुपये पन्द्रह आने कह कर बुलाते थे।"

बिलकुल वही-वही आदम का बेटा, जो अपनी उनपचास रुपये पन्द्रह आने की आमदनी में भी घर चला लेता था। उसने खूब हिसाब जमा कर रक्खा था-व्यवस्था में एक ही था। तीन बड़े और तीन छोटे प्राणियों का परिवार केवल उनपचास रुपये पन्द्रह आने में... वाह स्वतंत्र भारत में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर वह बन ही जाता। तीन बड़े हर तीसरे दिन एक ही वक्त, एक ही थाली में बांटबूट कर खालेते थे और तीनों छोटे भी एक वक्त एक ही थाली

में बांट बूट कर खा लेते थे। मुख्तसिर में मतलब है—घर चल जाता था। वैसे तो मित्रों के साथ चाय-चिवड़े से ही बेनर्जी बाबू का पेट दम दम भर जाता था। मां-बाप की खुराक वैसे ही कम थी। आँखों से कम दीखता था और दांत भी बे काबू हो गये थे। रहा पेट की बात, सो वे आस पास के पड़ोसियों की गाली-गलौच से अपना "कोटा" पूरा कर लेते थे। आठ दिन पहिले बेनर्जी पर आफत टूटी। जो चपरासी मैनेजर के घर काम करने जाता था, वह बेनर्जी के कहने से नहीं गया तो गरीब बाबू 'टेन्डर लीक' कर देने के अपराध में नौकरी से अलग कर दिया गया

—आज सुबह मैं उठा तो देखा कि सामने वाले मकान के दरवाजे बन्द हैं और कई लोग उसे तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं भी अचम्भित होकर दौड़ गया वहां तक। दरवाजा टूट गया ··· बेनर्जी का सारा परिवार-छह लाशें चिर निद्रा में लेटी हुई मुस्करा रही थीं। मनुष्य से छूटकर मौत की ममता में समा गईं, यही खुशी शायद उनके चेहरों पर थिरक रही है।

·· मैं अवाक् रह गया। मेरी दृष्टि धुँधली पड़ गई. पलट कर मैंने लाल लाल तमतमाते हुए सूर्य को आग उगलते हुये देखा और देखा कि उसकी शत् शत् किरणों में लाखों नर मुण्ड धरती से उठ कर ऊपर जुड़ते चले जा रहे हैं। श्यामा लगातार रो रही थी और नन्ही प्रतिमा दुनिया के गोले को कीले से गोदने में व्यस्त थी।

रोटियों और लाशों के जुलूस

सामने हवेली की छत पर नाना प्रकार के मेवे-मिष्ठान्न थालियों में सजाये जा रहे थे कुमार चुप था, किन्तु आँखों से आग के शोले बरस रहे थे। उसने श्यामा को उस मजाक का उत्तर देते हुये कहा 'छोड़ आई हैं समंदर में आबो हवा आग के शोले भरे हैं बदलियों में।" श्यामा हथेलियों से आँखें छुपा, सिसकियां भर भर कर रो पड़ी।

.... मेरा घर श्मशान की राह पर ही है। एक के बाद एक-छह लाशें निकलीं। उधर सड़क के एक किनारे मेवे-मिष्ठान्न की थालियों का भव्य जुलूस शहर में निकलने के लिए तैयार खड़ा था। मुझे अपना सुबह सुबह टूटता हुआ सपना याद आगया सामने गैलरी में बाजंत्री व शहनाई से भैरवी के स्वर उठ रहे थे।

.... हम सब नीरंध्र चट्टानों की तरह छत से मनुष्यता के टूटते किनारे देखने लगे। अबीर-गुलाल दूर तक उड़ा चला जा रहा था।

———————

नीली कोठी

मेहर बहुत खूबसूरत है। इतनी कि बड़े घरानों की ज्योतिर्मयी रूपसियों का सौन्दर्य भी उसके समक्ष लज्जित-सा-पराजितसा और सहमा सहमासा लगता है। वह कली की तरह धीरे-धीरे चटख रही है। अकसर झीनी-गुलाबी ओढ़नी और नीले बूटों वाली धवल सलवार पहनकर; बोलती हुई सी कजरारी आँखों से अपनी माँ मलिका भंगन के साथ नीली कोठी में वह घूमती-चहकती फिरती है। आते सावन की प्रथम आँधियों में वह अपना पन्द्रहवां वर्ष आधा पार कर लेगी।

मलिका की पक्की नौकरी नीली कोठी पर ही है सुबह से शाम तक वह यहीं बनी रहती है। हाँ बीच-बीच में थोड़ी फ़ुरसत निकाल कर आमने सामने के बँगलों में भी कभी-कभी काम कर आती है। इस तरह ऊपर की छुट्टी मजूरी से वह अपने आदमी मलखान की बोतलों का खर्च भी निकाल ही लेती है। मलखान वैसे चालीस का हो चुका है, फिर भी रोबीला जवान है। भंगियों के चौधरी का मुंह लगा आदमी है न! इसलिये किसी को कुछ नहीं समझने की अकड़ और गठे हुए शरीर का गर्विला मद

लिये. झाड़ू को बगल में टेढ़ी-बाकी खोंसकर वह बटेरों की लड़ाइयों क किस्से फाँका करता है। किसी दिन सरकारी सख्ती हुई तो हाथ में खूब तेल पिलाया हुआ काला लट्ठ और सर पर केशरिया साफा बाँधकर म्युनिसिपेलिटी क दरोगा साहेब क रजिस्टर में अपनी हाजिरी खुद जाकर लिखवा आता है, और फिर कलालो की पीछे वाली ध्वस्त दीवार के सहारे पीता-झूमता बैठा रहता है। जिन सड़कों की सफाई का भार उसके जिम्मे है, वे किसी न किसी तरह शाम सवेरे साफ हो ही जाती हैं सच यह है कि वह अपनी मलिका के पीछे बेफिक्र है। बिरादरीवाले कहते हैं कि मलिका की नौकरी, 'राजा नौकरी' है। 'नीली-कोठी की मलिका' के नाम से वह बुलाई भी जाती है। मलिका में वैसा मद है भी। रंग गोरा है और शरीर माँसल है। पैंतीसवाँ पूरा कर चुकी है। लेकिन ठुड्डी पर गुदी हुयी दो हरी बिन्दुयें और 'हंसमुख' मुद्रा में सामने के दो बड़े दाँतों के बीच छूटी हुई सन्धि नवीन लहरें लहरा देती हैं। ....मेहर उसकी इकलौती सन्तान है। उसे उसने बड़े लाड़ प्यार से पाला है। मेहर ब्याह के लायक हो गई है किन्तु ऐसी प्यारी बेटी को जल्दी सुसराल की कैद में डाल देना वह पसन्द नहीं करती। वैसे यौवन की प्रथम सीढ़ी पर वह बात-बात में अरुण हो जाती है, फिर भी मलिका का ध्यान उस ओर नहीं है वह रोज मेहर को कोठी पर ले जाती है। मेहर पहले तो माँ को काम-काज में सहायता दे देती थी किन्तु इधर कुछ दिनों से उसे ऐसा कुछ होगया है कि बगीचे की सघन कुंज में तल्लीनतापूर्वक बैठी रहती

है, और उधर अन्तःपुर के पीछे वाले मैदान में मेंहदी की झुरमुटों के रन्ध्रों से सेठ की गोरी लड़की को देखती रहती है। सेठ की लड़की माया रोज छोटी-सी बग्घी में घूमती है। वह स्वयं रास थामकर कोचवान की जगह बैठती है, और कुंजों से घिरे मैदान में धवल अश्वों से जुती हुई रथनुमा बग्घी दौड़ाती है। उसके साथ नौकर चाकर का काम नहीं वह अकेली ही होती है.........।

इस वैभवसम्पन्न कोठी वाले सेठ कनकमल की केवल दो सन्तानें हैं, अरुण और माया। इनकी माँ वर्षों पहले सन्सार त्याग चुकी है। जब पत्नी गुजरी थी, तब कनकमलजी को बड़ी चिन्ता ने घेर लिया था। बच्चों के मातृत्व के अभाव की पूर्ति के लिये उन्होने दूर दृष्टि फैलाकर देखा तो उन्हें एक विधवा रिश्तेदारिन का ध्यान आया। उन्होंने उसे अपने यहां बुला लिया और घर का सारा भार उसे सौंप दिया। सो कोमल विधवा प्रमदा ने अरुण-माया को माँ की तरह दुलराया और माँ का अभाव नहीं खटकने दिया। ....प्रमदा बहुत मधुर थी। सामाजिक दृष्टि से भले ही उसके यौवन पर वज्रपात हुआ हो किन्तु उसका मन मरा नहीं था। वह सम्पूर्ण सौन्दर्यमयी थी। पति-विछोह के बाद प्रमदा का कोई नहीं था। यदि कनकमल उस पर दया नहीं करते तो उसे मेहनत-मजदूरी करके ही पेट भरना पड़ता 'कनकमल बड़े कृपालु हैं, पीड़ितों और दुखियों की सहायता करने वाले हैं।' यह चर्चा जब से प्रमदा आई है, तब से उनके आस-पास के रहनेवाले लोग

चला रहे हैं। 'यदि प्रमदा जवान और खूबसूरत नहीं होती तो ...... तो क्या कनकमल उसकी सहायता करते ?' मुंह लगे लोग इस प्रश्न का जवाब नहीं दे सकते। वे निरुत्तर हो जाते हैं। मलिका भंगन को कोई यदि उसके भरतार की कसम देकर पूछ ले तो वह कह सकती है कि एक दिन बरसाती आधी रात में उसे कौनसा दुष्कृत्य करना पड़ा था। वह बरसाती रात उसे निश्चित ही याद होगी। उस रात प्रमदा की झुकी हुई पलकों के नीचे गोरा नन्हा शिशु मरा पड़ा था, और सेठ कनकमल अपराधी की भाँति धुंधले उजाले में मलिका से, उसे कहीं गाढ़ आने के लिये अनुनय-विनय कर रहे थे।...... सो मलिका कह सकती है कि नीली कोठी के स्वामी पीड़ितों और दुखियों की सहायता किन अवस्थाओं में किन शर्तों पर करते हैं ....जो कुछ भी हो प्रमदा नीली कोठी में माँ का भार निभा रही है। अरुण-माया पर उसका अपार स्नेह है। जानकार क्षेत्रों में वह कोठी की रानी है बरसाती रात के प्रकरण के बाद से मलिका की नौकरी और भी पक्की हो गई है। वह चाहे जिसे मुंहतोड़ उत्तर दे देती है। उधर मेहर ने माया से प्रेम बढ़ा लिया है माया के साथ वह भी कुंजों में चहकती फिरती है। माय और मेहर की उम्र में अधिक अन्तर नहीं है कद भी समान है। हां रूप और सौन्दर्य का आकर्षण मेहर में अधिक है। यहीं माया पराजित है। यहीं मेहर की विजय है। नहीं तो भंगन की लड़की से माया का मन मिलता ही क्यों कर! .... माया मिशन स्कूल में पढ़ती है न

इसका भी उस पर प्रभाव है। मलिका को इस रिश्ते का भी बड़ा दम्भ है कि वह भंगन है और उसकी मेहर शहजादी की सहेली है। इस दम्भ के साथ पिछले कुछ दिनों से उसके मन में एक भय भी प्रवेश पा गया है।···
···जब वह कुंजों के पास झाड़ती बुहारती रहती है, तो नौकरों चाकरों और राजा बाबू अरुण को भी कभी कभी मुहब्बत की गज़लें गाते गुजरते वह देखती-सुनती है। इतना ही नहीं, झुरमुट में से एक बड़ी भूरी आँख को भी उसने मेहर की ओर अचानक एक दिन घूरते देख लिया है।······ वह भूरी आँख जिसने वर्त्तमान युग में धर्म और ईमान की परिभाषायें बदल दी हैं।········आज से मलिका का दम्भ चूर हो गया है। झाड़ू की सरर-सरर के साथ उसका मस्तिष्क भी चलने लगा है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कोठी के विस्तृत उद्यान के एक कक्ष में आसाम के घने वनों का एक छोटा-सा नमूना भी रचा हुआ है। इस वन की ओर जाने वाले रास्ते भी ऐसे सघन हैं कि दिन के प्रखर प्रकाश में भी वहाँ अन्धकार व्याप्त रहता है। ············उस दिन इन्हीं रास्तों को साफ करते करते मलिका को बहुत देर हो गई। कमर सीधी करने के लिये जैसे ही उसने झाड़ू नीचे पटकी और सीधी खड़ी हुई, तो देखती है कि सामने के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से, जो सीधा कोठी के शयन-कक्ष की ओर जाता है, एक आदमी चला आ रहा है। वह डर गई। पुराने वृक्षों में भूत रहते हैं, यह बात उसके मस्तिष्क में आयी ही थी कि वह आदमी निकट

आ पहुँचा। मलिका थरथराती सी देखती रही।······किन्तु वे तो सेठ कनकमल थे। मलिका के मन से भूत का डर निकल गया, किन्तु इस अँधियारे जंगल में कोठी के स्वामी को देख कर उसका कलेजा काँप उठा।······

'मलिका! मेहर की शादी कब क रही हो?'

'हजूर ·······आते साल!'

'तैयारी कर ली है न?'

'मेहर हजूर की ही है··· सब फिकर है हजूर को!'

'छोरा कहां का है?'

'सिकन्दराबाद का है··· पढ़ा लिखा है हजूर·· ··· गांधी महाराज का भी काम करता है ···जाने क्या कहते हैं ···· हां लीडर हैं!'

'तो देख ऐसे लड़के से शादी करके बिरादरी में अपना नंगापन मत दिखाना · ···जितना भी लगे ले जाना।'

'हजूर को ही सब करना पड़ेगा ·· हम तो यहीं का खाते हैं। इसी मिट्टी में मरना है ···और किसके दर पे जायेंगे?'

मलिका ने ऐसा कहकर कनखियों से कनकमल की ओर देखा।

[बाइस]

कनकमल क्षण भर चुप रहे। मलिका ने धड़कते दिल से अपना टोकना उठाया और चलने को हुई। मधुर वाणी में कनकमल ने बुलाया 'मलिका'। मलिका का कदम रुक गया।

मलिका ! तुमने प्रमदा के मामले में मुझे बहुत बचाया है। ... . आज नीली कोठी की इज्जत धूल में मिल गई होती !'

'मैं तो हाजर हूं हजूर के लिये..... अब भी कोई काम हो तो ......मेरा जान निछावर है।'

कनकमल ने जल्दी से अपने मलमली कुरते में लगा सोने के बटन का सेट उतार कर मलिका के टोकने में डाल दिया। मलिका ने चारों ओर देखा—कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। कोई नहीं था। केवल हवा थी और पेड़ की डाल धीरे धीरे झूम रही थीं। कनकमल की आँखों में मतवालापन यकायक ही तैर आया। उन्होंने भीगी वाणी में कहा "मद भरी ..... मेहर" बोलते-बोलते रुक गये। मलिका चुप थी, किन्तु धड़कनें बढ़ गईं। वह बोल उठी 'हजूर'.........'

'मैं निहाल कर दूंगा मलिका !'......एक बार...... सिर्फ एक बार......मैं पागल हो उठा हूँ..... ...मेहर अप्सरा है।'

'हजूर !'

'बस मलिका, ...मेहर के ब्याह में चार चाँद लगवा दूंगा।

सिकन्दराबाद वाले भी देखते ही रह जायंगे !' मलिका निष्प्रभ खड़ी थी।

'मलिका क्या कहती हो ?' कनकमल ने निर्णयात्मक स्वर में पूछा।

'हजूर की बात .. ...मंजूर !'

कनकमल की आँखें उल्लास से दमक उठीं। उन्होंने कहा-'चार दिन बाद शनिवार की रात को अरुण की वर्ष-गाँठ का उत्सव मनाया जाने वाला है। एक बड़ा भोज भी होगा, इसलिये सफाई के लिये तुझे वहाँ आधी रात तक रहना होगा। आठ और नौ के बीच सोने वाले कमरे की ओर मेहर को लेकर आ जाना .. ..मैं तैयार रहूँगा..... समझी ? ...हाँ ले पाँच सौ रख ले . शादी के लिये अभी से अनाज-कपड़ा लेती रहना। वक्त पर नहीं मिलेगा।' मलिका ने आँचल फैलाया और नोटों का बंडल उसके आँचल में आ पड़ा। ....मलिका अभिवादन करके चल पड़ी।

"शनिवार की रात मत भूलना।"

मलिका ने पीछे मुड़कर स्वीकारोक्ति में दूर से आँख झुका दीं। वह मनके अंधड़ में फिर जल्दी जल्दी रास्ता तय करने लगी। जब वह सघनता से बाहर आई, तब साँझ प्रायः डूब चुकी थी। मेहर सामने ही मिल गई। उसने ज़रा नाराज़ होकर पूछा—'मां इतनी देरी क्यों करदी, चाचा जान ले लेंगे न?' मलिका ने मेहर को सर से पांव तक एक बार देखा। उसकी आँखों के सामने वह भूरी आँख घूम गई।......वह भूरी आंख जिसने एक दिन आज का भविष्य आंक दिया था। एक क्षण चुप रहकर वह बोली, 'लेरी मेहरी ये दो रुपये कलदार......आगे चलकर कलाली से दो बोतलें ले ले..... मैं भी आ रही हूँ।' मेहर ने रुपये लिये और चल दी। मलिका ने पांच सौ का बंडल और सोने के बटन सावधानी से रख लिये और कोठी के विशालकाय फाटक से बाहर हो गई।

मलिका ने बीती तीन रातें करवटें बदल-बदल कर ही काटी हैं। वह विक्षिप्त है। चेतना झंकार की तरह डूबती जा रही है, फिर भी वह अपने आपको सम्हाले हुये है। वह नित्य काम पर आती-जाती है, किन्तु जी लगाकर काम नहीं करती। मलखान लट्ठबाज है, इस लिये उससे उसने कुछ नहीं कहा।......अन्त में वह दिन आ ही गया। मलिका लगातार सोच ही रही है ....लेकिन सोचे भी क्या? या तो वह नौकरी छोड़दे या अपनी बेटी की अस्मत अपने हाथों ही बेंच दे। नौकरी छोड़ देने पर भी वह इस शहर तक में नहीं रह सकती। उसकी हत्या होगी और

परिवार निर्मूल कर दिया जावेगा। नीली कोठी का पिशाच पैसे के बल पर यह सब कर सकता है। ... सब उसके दिमाग में चल रहा है दिन भी ढल रहा है। नीली कोठी पर नाच-गाने शुरु हो गये हैं। अरुण का जन्म-दिवस है। मोटरें आ-जा रही हैं। मल्लिका और मेहर काम कर रही है। आज आधी रात तक उन्हें यहीं रहना है। मेहर आज काली बूटेदार सलवार पर पिस्तई महीन ओढ़नी ओढ़कर आई है। इस पोशाक का कट रंग-बनावट ठीक माया के उस पोशाक की तरह है, जो उसने सिनेमा और पिकनिक पर जाने के लिये बनवाया है। सेठ कनक-मल अतिथियों के आगत स्वागत की धूम के बीच मेहर को ललचायी आंखों से देख जाते हैं। ...दिन ढल गया और नीली कोठी चमचमा उठी। मल्लिका ने अपने मन की तैयारी पक्की करली। शयन-कक्ष के पीछे वाले मैदान में प्रायः अंधेरा ही रहता है। उस ओर की मोड़दार सड़क पर कोई एकाध मोटर गुजर जाय तो क्षणिक प्रकाश झलक उठता है। हवेली वाले लड़कों और लड़कियों के लिये यह अंधेरा मैदान वरदान स्वरुप है। वे तार लांधकर सिनेमा और दूसरी रंगीनियों में जाते-आते रहते हैं।......

टावर की घड़ी ने ठीक साढ़े आठ बजाये। कनकमल अधीर से धीरे-धीरे दबे पांव बरामदे में घूमने लगे। शयन-कक्ष की धुंधली बत्ती बुझाकर जैसे ही वे फिर बरामदे में आये, तो देखा कि मल्लिका हाजिर है, उन्होंने दबी आवाज में पूछा, 'कहां है मेहर ?'

'हजूर स मने झाड़ की ओट में'

'फिर क्या देर है ?'

'कुछ नहीं, आप जाइये, मैं इधर आड़ में चली जाती हूँ।'

'लेकिन !'

'लेकिन क्या ?'

'कभी-कभी हजूर मोड़वाली सड़क से आती-जाती मोटरों का उजेला झलक उठता है, इसलिये आप मेरी सलवार और ओढ़नी डाल लीजिये। कोई देख भी लेगा तो शक नहीं होगा। कसूर माफ हो तो मैं कहती हूं कि यह मेरी झाड़ू भी साथ रख लीजिये'

'ठीक है मलिका, लाओ यह सब मुझे दे दो, मलिका एक अतिरिक्त पोशाक साथ लाई थी, इसलिपे उसने देर नहीं लगाई। जनानी वेश में सेठ कनकमल उस अन्धकार की ओर झपट पड़े और लड़की के पास पहुँच गये। एक क्षीण व दबी आवाज ने पूछा-'उधर सब ठीक है न ? मैं तो तैयार हूँ।'

कनकमल ने उसकी कलाई पकड़ी और दूसरा हाथ उसके गले में डाला ही था कि वह घबरायी, किन्तु दबी आवाज में बोल उठी, 'अरे यह क्या .....पागल होगई है क्या ? मेरा कॉलेज वाला दोस्त बाहर खड़ा रास्ता देख

रहा होगा। मुझे निकाल दे जल्दी बाहर......हां और देख आधी रात में यहीं मिलना। बारह और एक के बीच लौट ही आऊंगी।' वह एक स्वांस में सब बोल गई। कनकमल पर जैसे आसमान अर्रा कर टूट पड़ा। वे छुटक कर दूर खड़े हो गये। यह कैसा धोखा। कनकमल की कलाई झपट कर उसने पकड़ली और बोली 'क्या कुछ पी लिया है......तुझे हो क्या गया? कनकमल के प्राणों का स्पन्दन जैसे अवरुद्ध हो गया। वे धम से धरती पर बैठ गये। माया भी भय से कांप उठी। अपने आंचल से बेट्री निकाल कर उस लड़खड़ाती मल्लिका पर रोशनी डाली। उसे सहस्त्रों सर्पों ने जैसे एक साथ डस लिया।...वे तो उसके बापूजी हैं, बाप-बेटी दोनों चुप हैं, और धरती जैसे घनन्-घनन् घूम रही है।

मल्लिका उधर मेहर को लेकर जल्दी-जल्दी कोठी के विशाल द्वार की ओर चली जा रही है। मेहर पूछ रही है कि क्या हुआ है? किन्तु मल्लिका इस विशाल द्वार से बाहर चले जाने के लिये दौड़ सी रही है। मेहर भी उसका आंचल पकड़ कर कदम मिला रही है। मल्लिका के सामने शून्य में वह भूरी आंख अधिक विस्फारित होकर घूर रही है और उस आंख से रक्त की एक धारा भी बूंद-बूंद टपक रही है।

———————

इक्कीस वर्ष का ईमान

सांझ डूब रही थी। थोड़ी देर पहिले चारों ओर बादल मंडरा आये थे और जल से भरी बदलियां नीचे-अधिक नीचे झुक आयीं थीं। किन्तु धीरे-धीरे मेघ विलीन हो गये और बरसने वाली बदलियां तिरोहित हो गईं। कसमसाती पीड़ाओं की तरह जो बादल दूर-सुदूर चीख उठते थे वे निर्धन थे, असहाय थे, गति विहीन थे।

खजांची सींकचों के पीछे अपने में डूबा हुआ-सा खोया-खोया बैठा था। दोनों हाथों में जंजीर बंधी हुई थी और वक्ष पर बड़ा काले रंग का नंबर लटक-लटक हिल रहा था। वह सींकचों के बहुत निकट बैठा-बैठा दूर डूबती हुई सन्ध्या को देख रहा था। जेल में कोठरी से बाहर चारों ओर सूनापन विषाद की तरह व्याप्त था। संतरी बीचों बीच बन्दूक के सहारे तन कर खड़ा था और उसके सर पर चह-चहाते पक्षी दल के दल विशीर्ण वृक्षों के गहरे-खोखले नीड़ों की ओर उड़े चले जा रहे थे। कैदी के ललाट पर छितराये हुये बाल, बरसाती हवा का हल्का सा झोंका पा कर उड़ते थे और सींकचों से टकरा कर बार बार उसकी विस्फारित आंखों पर गिर पड़ते थे। उसे सुध नहीं थी।

रोटियों और लाशों के जुलूस

रंग-विरंगे बादलों से आच्छादित गगन में जिस स्थल को वह निर्निमेष देख रहा था, वह था एक नीला जलाशय जो सघन वन के घेरे में दूर तक विस्तीर्ण होता चला गया था। उसके सुदूर तटवर्ती स्वर्ण के उत्तुंग पर्वतों की एक पहाड़ी पर रत्नों का मुकुट पहिने हंसता-खिलखिलाता विशेष पुरुष जलाशय में पाँव डुबा कर बैठा था। उसके हाथ में जो झलमलाता सा प्याला था, वह उसके ओठों से सटा हुआ था। लगता था वह मदिरा के इस लहराते सागर को तलछट पी जाने पर उतारू हो गया है।

...कैदी बीच में कभी कभी तल्लीनता तोड़कर, बालों की लटों को एक ओर ठेलता हुआ, जंजीर की खनन् खनन् में लोहे की मोटी शलाकाओं पर अपने ऊंचे ललाट को रगड़ लिया करता था। तार टूटता ही नहीं था। नीली झील के तटवर्त्ती स्वर्णिल पर्वतों पर वह खेल अनवरत चल रहा था। बादल बह रहे थे, दृश्यावलियां टूटती जा रही थीं; किन्तु जिस चित्र पर उसकी दृष्टि बार बार अटक जाती थी वह तरल हो कर भी स्थिर था। बादल चल रहे थे, किन्तु मदिरा के प्याले वाला हीरे मोतियों से जड़ा हुआ विशेष पुरुष भूलुंठित नहीं हो रहा था। वह अत्यन्त प्रगल्भ, उद्धत-उद्दाम पुरुष था कि उसकी निःशब्द अटूट हंसी दिशा-दिशा में हिनहिना रही थी......सो कैदी अपलक बादलों के उस क्रीड़ा-स्थल से दृष्टि जोड़ कर बैठा था। धीरे धीरे सांझ सघन हो आयी। मौन अंधकार चुपचाप चारों ओर घिर आया। कैदी के विचारों का केन्द्र मिटने ही वाला था।

इक्कीस वर्ष का ईमान

ठन् ठन् घण्टा बजा, पहरा बदला; संतरी के चबूतरे पर बिजली का लेम्प झक् से जल उठा और आसमान के रंगीन खेलों पर परदा गिर पड़ा। कोठरी के घने अंधकार में कैदी डूब गया। मच्छड़ों के गीतों के साथ बाहर मेंढक ताल देने लगे। कैदी छड़ों से पीठ लगा कर बैठ गया। संतरी ने कोठरी का ताला खटखटाया और कैदी को बन्दूक का एक ठोंसा लगाया। वह चौंक उठा। संतरी ने थपथपाते हुये पूछा "क्यों भाई खजांची, कितने दिन बात गये?

"जी ····एक वर्ष बीस दिन ··· और ये इक्कीसवां दिन बीत रहा है।"

संतरी एक क्षण स्थिर खड़ा रहा। दूसरे ही क्षण उसने पूछा, "कुछ देर बाहर खुली हवा में बैठना चाहता है?"

कैदी ने सर हिलाते हुये कहा, "नहीं मैं भयंकर अपराधी हूं, आप व्यर्थ खतरा मोल न लें।"

संतरी आश्चर्य में डूबा खड़ा रहा। इस विचित्र कैदी की निश्छलता पर वह मुग्ध हो उठा और कोठरी की छड़ें पकड़ कर कुछ क्षण डूबा रहा।

उसने फिर पूछा, "तम्बाखू खाता है रे?"

"नहीं।"

"बीड़ी-बीड़ी पीना है?"

रोटियों और लाशों के जलूस

"नहीं।"

संतरी निश्चेष्ट होकर सोचता रहा। फिर बुदबुदाया "कितना भला आदमी है रे तू! न जाने किस जनम के पाप तुझे खा रहे हैं।" कैदी छड़ों पर ललाट धर कर बैठा रहा; और बूटों की खट् खट् आवाज़ के साथ संतरी आगे बढ़ गया। मच्छड़ों के गीत पूर्ववत् कैदी के कानों को निनादित करने लगे।··· · रात धीरे धीरे बढ़ रही थी। बरसाती हवाओं के झोंके उसकी अर्द्ध मीलित आंखों में नींद की हल्की खुमारी भरने लगे। ठन् ठन् बारह घंटे बजे और उसकी पलकें उघड़ पड़ीं। आज अचानक उसे अपना अतीत याद हो आया। वह कोठरी में टहलने लगा। एक एक कर उसे सब स्मरण हो आया। वह दीवार पर मस्तक टेक कर खड़ा रहा। डूबती हुई सांझ में गगनांचल का वह क्रीड़ास्थल उसकी कल्पना में फिर सजीव हो उठा। वह दीवाल से सट कर कोने में दुबक गया और सपनों में खो गया······।

एक सूती मिल का वह प्रमुख खजांची था उसकी जिन्दगी पहाड़ी नदी की तरह नीरंध्र चट्टानों और नीरस पत्थरों से, बिर्भीक टकराती-उलझती चली जा रही थी! गृहस्थी सीमित नहीं थी। छोटा अपंग भाई, क्षय से पीड़ित स्त्री अस्थमा का शिकार बूढ़ा बाप और टिमटिमाती तारिकाओं की तरह दुर्बल बच्चे, खजाञ्ची के मन और मस्तिष्क में दिन-रात तैरते रहते थे। राजा का हाथी जितने पैसे का घास और आटे का पिंड नित्य खाता है, उतना

पैसा उसे वेतन के रूप में, एक महिने कठोर नौकरी करने के बाद मिलता था। इक्कीस वर्ष तक वह तूफानों में अडिग रहा। नोटों के पुलिन्दों और रुपयों की ढेरियों के बीच बैठकर खजान्ची कभी कभी अपने आप में डूब जाता और कई क्षणों तक शून्य जगत में मौत की दैत्याकार तस्वारें देखता रहता था ! अपनी नौकरी के अन्तिम पांच वर्षों में वह अधिक झुलस गया था। जवानी कब आई और कब निकल गई इसकी उसे सुध नहीं थी। जब मित्रों के बीच यौवन की कहानियां छिड़तीं तो उसे याद नहीं आता था कि वह भी कभी यौवन की लीलामय चौरंगी बस्ती से होकर निकला है। जवानी के सपनों को उभाड़ने पर उसे ज्वालायें दीखतीं, लपलपाती लपटें उसकी ओर लपकतीं और ज्वालामुखियों से सहस्र अग्निधारायें प्रबल वेग से उसकी ओर दौड़ती सी लगतीं। उसे ऐसा भी लगता जैसे समूचा अतीत उसकी ओर शुम्बल लेकर दौड़ता आ रहा हो। वह कराह उठता था। मित्रों के बीच एक तमाशा हो जाता। वे समझते कि खजान्ची को कभी २ 'हहराने' का दौर आता है। दिल की आग के वे विविध चित्र उसके वे प्रफुल्लित साथी नहीं देखपाते थे। गगन चुंबी पर्वतों सी आपत्तियों को लांघ-लांघ कर उसने खजाने में इक्कीस वर्ष बिता दिये। अन्तिम पांच वर्ष कठिन बीते। एक दिन छोटे भाई के दोनों हाथ रेलगाड़ी की एक घटना में कट गये, तो गृहस्थी का सारा भार उस पर आ गिरा। पत्नी भी मन्जिल के एक पत्थर को पकड़ कर बैठ गई, थक गई, हार गई। उसके समस्त क्षय ने विजय चिन्ह गाड़ दिया। जीर्ण शीर्ण मकान की एक

दीवाल अरराती गिर पड़ी और उन सात टिम टिमाते हुये तारों पर भी सघन घन छा गये। उन बच्चों को देखकर सुसम्पन्न घरानों के बच्चे डर जाते थे। हड्डियों के उन सात ढांचों की चौदह आंखें, टिम टिम करती रहती थीं। जब वे मां के अस्त-व्यस्त आंचल के आस पास छितराये से लेट जाते थे, तो दूर से ऐसा लगता था मानों भारतवर्ष का मान चित्र उभरा हुआ पड़ा है और पीतवर्ण भारत माता उस सारी भूमिका को लेकर धरती में धंस रही है। खजान्ची कोने में बैठकर जलभरी आँखों से अपने टेढ़े-मेढ़े नक्शे के डूबते हुये क्षण देखता रहता था और वह अस्थमा का रोगी-खाँसता हुआ बूढ़ा बाप 'लावनी' गुन गुनाकर पहरेदार की तरह रातें बिता दिया करता था।

खजाने में उसके ईमान का बाईसवाँ वर्ष शुरू हुआ। एक दिन मौका देखकर वह मिल मालिक के दफ्तर में घुस पड़ा। घूरती हुई आखों से चिनगारियाँ बरस पड़ीं। उसने उससे पूछा कि वह बिना आज्ञा प्राप्त किये अन्दर क्यों आया? नत मस्तक होकर उसने अपनी तरक्की की प्रार्थना की और लड़खड़ाती गृहस्थी को राह पर लाने के लिये कर्ज मांगा। 'जाओ अपने प्यारे नेताओं के पास जाओ जिन्होंने स्वराज्य लिया है··· हमारे पास क्या है'! "यौवन से भरे लाल चेहरे के ओंठ यों खुले। इसके बाद नॉनसेन्स, फूल, डफर आदि की बौछारें होने लगीं। खजान्ची काँप उठा, दीवारें हिल गयीं और उनपर टंगे संसार के भिन्न २ मान चित्र खर्र खर्र उड़ पड़े। मालिक की मेज के

इक्कीस वर्ष का ईमान

सामने पाषाणनिर्मित मजदूर की एक भाव मय मूरत खड़ी थी। मजदूर की सबल भुजाओं पर दुनियाँ की विविध मशीनें हलचल मचा रही थीं। उन मशीनों से जो उत्पादन बाहर आ रहा था, वह दुनियाँ में एक नवीन प्रभात बिखरा रहा था। मिल मालिक की दहाड़ से और धम् धम् मेज ठोकने से पाषाणी मूरत अपनी विस्तृत भूमिका के साथ हिल उठी। 'गेट आउट' की चिल्लाहट के साथ ही खजान्ची लड़खड़ाता कमरे से बाहर निकल आया और खजाने की अपार सम्पदा के बीच मोटी मोटी किताबों का सहारा लेकर थोड़ी देर निश्चेष्ट पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद वह समग्रचेतना लेकर उठा उसके मन का विद्रोह उबल पड़ा। उसने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बांध कर अपने ईमान को ठोकर लगाई और नोटों का पुलिन्दा उठा कर जेब में रख लिया। डूबती हुई साँझ में जब वह घर आया उसने देखा कि बूढ़ा चलने की तैयारी कर रहा है और अपंग भाई एक गिरती हुई दीवाल को अपनी पीठ का सहारा देकर गिरने से रोक रहा है। उसने धीरे से भाई को सम्हाला और डग मगाती दीवाल को गिर जाने दिया। जोर का धमाका हुआ और झक से अन्धेरी कोठरी ढेर भर उजेले से भर गयी। खजान्ची पागलों की तरह हँसा और बच्चों ने खुश होकर तालियाँ बजायीं। अपने अन्धेरे जीवन में सहसा उजेला पाकर क्षय पीड़िता पत्नी ने आंखे उघाड़ीं और सारे प्रकम्पित घर को ध्यान से निहारा। खजान्ची ने बूढ़े की नाड़ी टटोली और पाया कि बूढ़ा जल्दी नहीं जा रहा है। उसने दिया उजालकर बच्चों को प्यार से भोजन परोस दिया और

पत्नी को अपने हाथ से एक प्याला दूध पिलाया। खाँसी के एक दौर के बाद रोगिणी मन लगाकर पति को देखने लगी। आज खजान्ची के सारे हावभाव उसे आश्चर्यकारी लगे। वह अपलक देखती रही। खजान्ची एक बार जोर से हँसा और दूसरे ही क्षण उसने नोटों का पुलिन्दा जेब से निकाल कर गृहिणी की गोद में डाल दिया। पूरे नौ हजार थे। उसने मुस्कराकर धीरे से कहा, 'पूरे नौ हजार हैं। अपंग भाई पास सरक आया और मरणासन्न बूढ़ा बाप टुगुर टुगुर देखने लगा। खजान्ची ने घर की शेष दीवालों को देखा और पत्नी की दुबली पतली कलाई हाथ में लेकर कहा 'बस लक्ष्मी इस दुनियाँ को बदल डालो'। सब देखते रहे। रातांधिर आयी थी। आठ बजे होंगे। खजान्जी उठा, उसकी भरी भरी आँखों से दो बूंद आंसू लक्ष्मी की कलाई पर टपक पड़े। उसने जल्दी जल्दी अपनी फटी जूतियाँ पहनी और द्वार से सड़क पर उतर गया। कोई कुछ समझ न सका। वह चलता चला गया। उसने दूर से देखा, मिल मालिक का गगनस्पर्शी महल बिजलियों से चम चमा रहा है। वह आगे बढ़ता गया। लोहे के बड़े फाटक पर सन्तरी ने उसे रोकना चाहा, किन्तु खजान्ची को पहिचानकर वह चुप खड़ा रहा।

महल का सजा सजाया कमरा हंस रहा था। अर्द्ध नग्न रमणियों की तस्वीरों के नीचे पत्थर की दीवालों पर शृंगार के अनूठे चित्र उभर रहे थे। शृंगारित कुमारियों के विशेष अंगों पर बिजली के छोटे छोटे बल्ब उजल रहे थे। सेठ टमाटर से ताजे बच्चों के बीच हिन हिना रहे थे। खजान्ची

ने निर्भीक होकर कमरे में प्रवेश किया। मैले-कुचले खजान्ची को देखकर बच्चे डर गये और उसे भयभीत दृष्टि से देखने लगे। वह नीचे फर्श पर बैठ गया। सेठ ने चिल्लाकर पूछा 'क्या है जी ? '

'जी ··मैने आज नौ हजार रुपये खजाने से ले लिये है।'

सेठ को इन शब्दों पर विश्वास न हुआ उसने गरजकर पूछा

'क्या है······मैं समझा नहीं ?
'नौ हजार रुपये मैने खजाने से ले लिये हैं।'

से की आँखें सुर्ख हो उठीं। उसने दहाड़ कर पूछा, 'तो तुमने चोरी की है !'

'जी ··· आप जैसा समझें !'

सेठ ने बिजली की घण्टी टनटनायी। सेक्रेटरी उपस्थित हुआ। सेठ ने उसांसें भरते हुये कहा, 'सेक्रेटरी पुलिस को फोन करो, खजान्ची ने खजाना लूट लिया है' खजान्ची ने सेक्रेटरी की ओर देखा। वह आश्चर्य में डूबा खड़ा था। खजान्ची ने उसे सुलझाते हुये कहा, 'सेक्रेटरी साहब मैने अपनी लड़खड़ाती गृहस्थी को सहारा देने के लिये मिल से नौ हजार का कर्ज अपने आप ले लिया है, इसके बाद मैं मालिक के सामने उपस्थित हो गया हूं······ चाहे तो फांसी दे दीजिये।

सेक्रेटरी सोचता रहा। सेठ ने सेक्रेटरी की ओर दांत किटकिटाते हुए कहा' क्या हो गया है तुम्हें? मैं कह रहा हूं फोन करो, मुजरिम भाग जायगा'। सेक्रेटरी के होंठ हिले। उसने साहस बटोरकर कहा 'सेठ साहब खजान्ची पुराना है। इक्कीस वर्ष तक इसने कम्पनी की नौकरी की है। गरीबी के तूफानों ने यदि इसे भ्रमित कर दिया है तो हमें भी इतनी जल्दी कोई निर्णय नहीं कर डालना चाहिये।' सेठ क्रोध से काँप उठा। उसने जोर से एक तमाचा खजाँची के गाल पर जड़ दिया। सेक्रेटरी चुप खड़ा था। दो क्षण सारे वातावरण में स्तब्धता छा गई। कश्मीरी सेब की तरह लाल गाल वाले बच्चे दुबककर एक ओर बैठ गये। केवल दूर सामने वाले छज्जे में सेठ की जवान लड़की रेडियो पर चलने वाले गीत के साथ छुमक छुमक नाच रही थी। सेठ सेक्रेटरी की ओर उन्मुख हुआ और कड़क कर बोला 'मेरी आज्ञा मानो' सेक्रेटरी चला गया। सेठ फेन से सफेद गद्दे पर लदकर दो क्षणों तक स्प्रिंग का मजा लूटते रहे। खजान्ची सर झुकाकर पाँव की उंगलियों से संगमर्मर के फर्श पर चित्रित फूलों, लताओं और पत्तियों को कुरेदने में व्यस्त हो डूबा रहा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

न्याय विभाग ने खजान्ची को दो वर्ष का कठिन कारावास दिया। एक महीने के जैल जीवन के बाद एक दिन उसे हृदय विदारक समाचार मिला। उसका जीर्ण शीर्ण

मकान गिर पड़ा है। पत्नी, बूढ़ा बाप अपंग भाई और चार बच्चे उसी में दबे रह गये। तीन बच्चे किसी तरह बाहर खींचे गए तो अस्पताल ले जाते हुए रास्ते में ही खतम हो गये। सुनकर कोठरी के घने अन्धकार में वह धम से गिर पड़ा। दो दिन तक निष्प्राण पशु की तरह वह धूल भरे फर्श पर औंधा पड़ा रहा। आखिर एक बूढ़े सन्तरी ने उसे सान्त्वना दी और अपनी छलछलाई आँखों से दो बूंद आँसू गिराकर उसे थपथपाया।

...... सो उसके जेल जीवन का एक वर्ष पूरा हो गया था और दूसरे वर्ष का इक्कीसवाँ दिन बीतता जा रहा था। सपने चल रहे थे। रात बढ़ रही थी। मच्छरों के गीत भन्न भन्न कानों में कुछ गा जाते थे और बाहर मेंढक उसी तरह ताल दे देकर पानी के डबरों में छपाक छपाक कूद रहे थे। आकाश में बदलियाँ फिर घिर आयीं। मेघ गरज उठे और एक जोर की आंधी चल पड़ी। कैदी दीवाल से मुंह सटाकर उसी तरह रात बिता रहा था। सपनों की खुमारी अभी दूर नहीं हो पाई थी। पानी की बड़ी बड़ी बूंदें बाहर गिरने लगीं। मध्यरात्रि ढल चुकी थी। यकायक पूर्व की ओर से बिजली दमकती कड़कती पश्चिम की ओर निकल गई और कुछ क्षणों के बाद एक जोर का धमाका हुआ। कैदी चौंक उठा। वह दौड़कर कोठरी से सींकचों के पार देखने लगा। तूफान भयानक था। कौंधती हुई बिजलियों में सर के उड़ते हुये बालों के नीचे कैदी की आँखें दमक रही थीं। मूसलाधार पानी बरसने लगा। सर्दी

से थरथराता खट् खट् बूटों की लथड़ाई चाल से बूढ़ा सन्तरी सीकचों के पास आया।

कैदी ने पूछा—'कौन ?'

बूढ़े विकम्पित स्वर ने कहा 'सन्तरी'

'बाबा इस तूफान में··· ?'

'हाँ·· तुम्हें सुनाने आया हूँ।

कैदी की आँखें दमक उठीं। वह भूरे चेस्टर से ढंके संतरी की ओर देखने लगा।

'खजाँची तुमने बिजली की कड़क के साथ एक धमाका सुना ?'

'हाँ'

'तुम्हारे सेठ के महल की मन्जिलें धरती चाट रही हैं'

कैदी धम से नीचे बैठ गया। जंजीरें खनन् खनन् बज उठीं। संतरी ने बूढ़े लालटेन के मैले-पीले उजाले में देखा; कैदी [खजान्ची] आकाश में कौंधती बिजलियों को अपलक देख रहा है। वह शायद देख रहा था कि उसका इक्कीस वर्ष पुराना, पराभूत ईमान, आज विजय के उल्लास में अमानवीय दुनियां पर खिलखिला रहा है··· ·· सुबह सुबह बरसाती धूप की किरणों ने कैदी की कोठरी में प्रवेश किया। हारा थका कैदी कम्बल ओढ़कर निश्चिन्त सो रहा था !

— —— ——

नंगी दुनिया

शहर की चहल पहल और कोलाहल से दूर, बड़े-बड़े लोगो के बंगले अलकापुरी में ही बसे हुए हैं। अलकापुरी छोटी सी पहाड़ी पर, शहर से तीन मील दूर है। यहां रहने वाले 'आदर्श वादी' (Idealistic) लोग शहर वालों से अधिक सम्पर्क नहीं रखते। व्यापार, धंधा और अफसरी करने शहर चले जाते हैं और शाम को अपनी अलकापुरी में लौटकर मौज की जिंदगी बसर करते हैं। अलकापुरी में अनर्गल वातावरण नहीं है। रहन सहन का अंग्रेजी ढंग है। शोर गुल है तो सिर्फ बंगलों में मस्ताये पूंछ कटे कुत्तों का और रेडियो पर ध्वनित सु-मधुर गीतों का शायद कुत्तों के स्वरों और रेडियो के गीतों की ध्वनियों का साम्य बंगले वालों की 'हॉबी', है।

शहर की बड़ी बैंक के बड़े मैनेजर श्री योगेश्वर अलकापुरी में ही रहते हैं। उन्होंने जिंदगी में कहते हैं आग से खेल खेलकर अपनी उन्नति की है। पहले बड़ी बैंक का मैनेजर अंगरेज था। बिरादरी वाले कहते हैं कि गोरे मैनेजर के साथ काम करना कोई मजाक नहीं है, इसीलिये तो कहा जाता है कि योगेश्वर ने गोरे साहब के साथ रहकर आग का खेल खेला। उनके 'यस सर' [yes sir]

में एक माधुर्य्य था और माधुर्य्य उस अंगरेज को भा गया था। बीस वर्ष पहले बीस रुपये महावार पर योगेश्वर की नौकरी शुरु हुई थी। इसके बाद 'यस सर' 'यस सर' की सीढ़ियां चढ़ते चढ़ते वे एक दिन इन्द्रासन पर बैठ गये।

नरहरि उनके बचपन के दोस्त हैं। उस दिन बड़ी रात बाद नरहरि चाचा अलकापुरी से वापस आये। बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। नरहरि वन विभाग में छोटे से अकाउन्टेन्ट हैं। दूर एक कस्बे में इन दिनों काम कर रहे हैं उस दिन योगेश्वर स्वयं उन्हें अपनी कार में अलकापुरी ले गये थे।......नरहरि चाचा ने मुझे रात के दो बजे तक सोने नहीं दिया। श्री योगेश्वर का विशद वर्णन मेरे समक्ष रखा। सबसे पहले उनके बंगले की लम्बाई-चौड़ाई और पेरिस की फैशन के कमरों का एक खाका खींचा। इसके बाद बिजली का चूल्हा, बिजली का प्रेस; बिजली की झाड़ू बिजली का टेबल लैम्प और विशेष कर उस वैज्ञानिक अलमारी का आश्चर्य जनक वर्णन प्रस्तुत किया जिसमें हरी साग भाजी कई दिनों तक हरी और ताजी बनी रहती है। 'आगे चाचा ने अधिक आर्द्र और भावुक होकर कहा—योगेश्वर कितना सरल विनयी और नम्र है कि उसने खुद घूम-घूम कर अपना सम्पूर्ण सुसज्जित बंगला मुझे दिखाया। उसका मन नीच ऊंच की विकार युक्त भावनाओं से मुक्त है। उसे अपने बड़े पद का दम्भ नहीं है। ठेठ अलकापुरी से इस सड़ी गन्दी गली तक अपनी कार में लाकर मुझे स्वयम् छोड़ गया है।..... ... और देखा अखिलेश उसकी सरला, विमला, कमला......

कितनी अच्छी लड़कियां हैं। बिजली सी चलती हैं, बिजली सी थिरकती हैं। बडी मधुर बोलती हैं। लगता है मानों किसीने उनमें बिजली के दिल फिट कर दिये हों। और इन्सानियत? .. ...इन्सानियत वहां बिजली के बल्बों से उजल रही है। पहाडी की निचली भूमि पर तालाब के किनारे बहुत से झोंपड़े खड़े हैं–कुछ खाना बदोश रहते हैं। उनसे अलकापुरी की आबहवा दूषित हो रही है। योगेश्वर ने बताया कि सरकारी हुकुम आ जाने पर वे झोपड़े तुड़वा दिये जावेंगे और वहां एक सुन्दर बाग की रचना कर दी जावेगी। . ...अखिल! पैसा हो जाने पर भी सचमुच योगेश्वर में अपनों के प्रति प्यार लबालब भरा है। मैले-हल्के कपड़ों में मुझे तो शर्म आ रही थी, किन्तु योगेश्वर था कि मुझे हाथ पकड पकड कर बंगले की प्रत्येक वस्तु दिखा रहा था। चार हजार मासिक पाता है! बुरा न मानना अखिल। .... देखो हमारे घरों को देखो। टिमटिमाती चिमनी, अंधियारे कमरे और खटमल-मच्छरों की भरमार। जवानी खो रहे हो अखिल। सच कहता हूं एक उछाल मारो तो इस पार से उस पार...बस...! बहुत बड़ी बड़ी बातें तुम कर लेते हो। मैं कहता हूँ क्या अपने जीवन में तुम योगेश्वर नहीं बन सकते? मैंने अपनी जवानी खोदी। तुम्हारे पास अभी समय है। स्वाभिमान की कोरी भावुकता को एक ओर रखदो तो मैं तुम्हें योगेश्वर से मिला देता हूं, मिल की कार्कूनी छोड़कर बैंक में पांव जमालो..... बोलो क्या सोचते हो? इस सड़ी गली जिन्दगी से छुटकारा चाहते हो तो व्यर्थ के स्वाभिमान को ठोकर लगाओ।

मैंने चाचा के इस भाषण का उत्तर नहीं दिया और दृष्टि जमाये शून्य में देखता रहा। नरहरि मेरे दूर के रिश्तेदार हैं। जब कभी कस्बे से शहर में आते तो मेरे घर ही ठहरते हैं। .....दो एक क्षणों के मध्यान्तर के बाद मुझे अचानक हंसी आ गई। दो बज चुका था। मैंने चाचा से प्रार्थना की कि वे अब सो जायं और अलकापुरी के माया बंगले का आनन्द सपनों में लें। मेरा ऐसा कहना ही था कि वे जोर से झल्ला उठे, 'जाओ, मैं कहता हूं तुम इसी नर्क में सड़ोगे! यह कैसी जिन्दगी कि बच्चे नंग धंडग पड़े हैं बीबी चीथड़े पहिन रही है और खुद की आँखें धंस रही है गड्ढे में! इस तरह का तंगदस्ती का जीवन गुजारने में कौन से आत्म सम्मान की रक्षा हो रही है'?

मैंने कहा—'चाचा बहुत बड़े भ्रम में हो, माना कि अलकापुरी के बंगले उंचाई पर बसे हुए हैं लेकिन जमीन की उंचाई हैवानियत की बुलंदी, और छल पूर्ण वैभव की मंजिल को जिन्दगी की आप सर्वोच्च उंचाई मान बैठे हैं? योगेश्वर तब बहुत अच्छे थे, जब वे शहर के किसी सड़े मोहल्ले में रहते थे और बैंक के साधारण क्लर्क थे। उस समय उनकी मनुष्यता की उंचाई शायद आज की वैभव की उंचाई से अधिक बुलंद रही होगी। वैभव की विज्ञापन बाजी पर मत रीझो चाचा... सो जाओ...... इस उंचाई की नंगी दुनियां को सर पर लेकर मत नाचो;।

नरहरि चाचा बोले नहीं! मैं भी चुपचाप पड़ा रहा! और न जाने हम लोगों कब निंद्रा ने घेर लिया!

[२]

उस दिन मूसलधार पानी बरस रहा था। मैं सरला, और बच्चे गहरी निद्रा में अचेतन सो रहे थे।

एक बजा होगा। बाहर कोई बुला रहा था। दरवाजे की लगातार खट खट से सरला की आंखें उघड़ पड़ीं। उसने दरवाजा खोला पानी खूब बरस रहा था। कोई दो थे। एक पूरा भींगा हुआ था। और दूसरा पानी से बचने के सारे साधनों से लैस था। सरला कुछ पूछती इसके पहिले ही आगन्तुक ने कहा कि वह नरहरि है। अभी अपने कस्बे से आ रहा है। बहुत जरूरी काम से यहां आना पड़ा है। सरला ने चिमनी जलाई। मेरी भी नींद खुल ही गई। नरहरि चाचा को मैंने पहचान लिया। साथ वाले, साहब बहादुर ने मुझे कान के पास सटकर धीरे से कहा, "जनाब! एक हजार का शार्टेज सरकारी पैसे में पाया गया है। क्या आप अपने नरहरि चाचा के लिये कुछ कर सकते हैं? पिछले दो दिनों से इनके साथ घूम रहा हूँ। मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका। कल रविवार है। यदि शार्टेज पूरा नहीं हो सका तो परसों ११ बजे यह केस पुलिस के सुपुर्द कर दिया जावेगा।"

मेरा मस्तिष्क घूमगया। एक हजार...........मैं कहां से लाऊं। नरहरि चाचा का सारा परिवार एक क्षण में मेरी आँखों के सामने चक्कर काट गया। पांच बच्चे और बीमार पत्नी....... ! क्या होगा इनका ?.........मैंने पूछा, "चाचा! यह कैसे हुआ ?" चाचा ने आर्तवाणी में कहा,

प्रतिमा के ब्याह और तुम्हारी चाची व बच्चों की बीमारियों ने, यह बड़ा गड्ढा कर दिया। सोचा था व्यापार-धन्धा खोलकर शार्टेज पूरा कर दूंगा। लेकिन कुछ न हो सका" मैंने कहा, "अकाउन्टेन्ट साहब! इस तूफान से इस गृहस्थी की रक्षा नहीं हो सकेगी?"

"पैसा या जैल बस तीसरा कोई रास्ता नहीं है। कल का दिन शेष है यहां कुछ हो सके तो कर दीजिये। आपके पास इन्हें छोड़े जा रहा हूं। कल शामको मिलूंगा। यहां मैं अपने एक रिश्तेदार के घर ठहर रहा हूं। आप हूं पर मुझे विश्वास है।" इतना कह कर अकाउन्टेन्ट बरसती झड़ी में ही खट खट चला गया।

नरहरि चाचा की आँखें डबाडब भर आयीं। मैं भ्रमित सा बरसती बरसात के घने अंधियारे में आंखे गड़ाये बहुत देर तक निश्चेष्ट बैठा रहा। चाचा ने प्रकम्पित स्वर में कहा, "चलो अभी योगेश्वर के पास चलना है। एक प्रयत्न और करलेता हूँ। वहां से मुझे बड़ी आशा है'। मैंने एक क्षण देर न लगाई। एक से ऊपर बज चुका था। चल पड़े घनी बरसात में और अलकापुरी पहुँचे। एक घंटे के सतत् प्रयत्न के बाद दरवाजा खुला। मैं बरामदे में खड़ा रहा और चाचा भीतर चले गये। बहुत देर नहीं लगी। नरहरि चाचा लड़खड़ाते पावों वापस लौट आये। योगेश्वर ने कह दिया कि ऐसे उनके कई रिश्तेदार हैं, वह किस किस की सहायता करे? तीन सौ, दो सौ, सौ कुछ भी वह उधार देने की स्थिति में नहीं है। अलकापुरी की उंचाई से हम

नीचे उतर आये। हवा के झोकों के साथ मुझे जैसे प्यारे सुकोमल बच्चों की चीत्कारें सुनाई पड़ रही थीं। शून्य में मुझे ऐसा दीख रहा था मानो बच्चों की तरल बिल बिलाहट के प्रचंड हिलोरों से अलकापुरी की उंचाई फुस फुसा कर नीचे बैठ रही है। हाथों की मुट्ठियां बंध गईं। मन ने कहा नये इन्किलाब की भूमिका यही है।... .. ..
चाचा भी विचित्र हालत में रास्ता पार कर रहे थे।

(३)

दूसरे दिन शाम पड़ते ही बड़े अकाउन्टेन्ट आ पहुँचे। थके मांदे चाचा कम्बल ओढ़े पड़े थे। और मैं सूखे आँखें लेकर बैठा था। अकाउन्टेन्ट ने पूछा,

'कुछ हो सका या नहीं?'

'नहीं'

सुनकर कुछ क्षणों तक बड़ा अकाउन्टेन्ट निष्प्रभ खड़ा रहा। फिर एक लम्बी आह भर कर बोला, 'हमें इसी गाड़ी से लौट जाना है।' मैं निष्प्राण सा बैठा रहा। उसने चाचा को झकझोरा चाचा उठ गये और झोला लेकर आगे हो लिये। दरवाजे तक पहुंचे ही थे कि सरला सिसकियां भर कर रो पड़ी। चाचा के पैर कांप उठे।

दोनों नेत्र बह निकले। सरला ने कहा 'हिम्मत न हारना गिरस्ती का सारा भार हम पर है नरहरि फूट पड़े उनके प्रकम्पित ओठों पर उनकी अन्तर पीड़ायें दुनिया की

हैवानियत मिटाने को कसमें खाने लगीं। फिर वे एक क्षणभी न ठहरे! बड़े अकाउंटेन्ट के पीछे पीछे चल दिये।

'कल ग्यारह बजे यह मामला पुलिस को दे दूंगा। एक रात बाकी है। कुछ हो सके तो रुपये लेकर कल १० बजे तक कस्बे आ जाना।' अकाउंटेन्ट की इस अंतिम बात का कोई आशाप्रद अर्थ नहीं था। किंतु उसकी आत्मा के ट्रेजिक कोने में स्पंदित मानवता की एक चिनगारी ने मुझे थोड़ा साहस दिया।

(४)

अंधेरी गलियों में भटक-भटक कर और जर्जर कच्ची दीवारों के घेरे में सड़ने वाली गृहस्थियों में घूम-घूम कर मैंने नरहरि चाचा के लिये अंतिम प्रयत्न किया। चाचा की गृहस्थी के लिये सज-धजकर आती हुई मौत पर सफल प्रहार हुआ भी। उसी समय आधी रात वाली ट्रेन से मैं कस्बे भाग चला। चाचा का घर स्टेशन से अधिक दूर नहीं था। सुबह सुबह ट्रेन से उतर कर मैं चाचा के घर के निकट पहुँचा तो मुझे लगा कि दुर्भाग्य की गहरी काली छाया उस गृहस्थी के आस-पास चक्कर काट रही है। धड़कते हृदय से मैंने जैसे ही घर में प्रवेश किया;बेटा—कहकर चाची भर्रायी, आवाज में मेरी ओर दौड़ पड़ी। मेरी दृष्टि उस कटोरे पर पड़ी जिसमें काला हरा पानी झिलमिला रहा था। 'जहर?' मेरे भीतर से एक आवाज जैसे लोह-आवरण को चीरकर निकल पड़ी।

चाची आंचल में मुंह छुपा कर रो उठी। और दो बच्चे भी मुझसे सटकर सिसकने लगे। मैंने कहा जिंदगियों का इस तरह अंत कर देने से समस्यायें हल न होंगी। चाचा दूसरे कमरे में पड़े थे। शोरगुल सुनकर समझे कि पुलिस आ गई है और विदाई का वक्त नजदीक आ गया है। वे बेतहाशा भीतर से दौड़े। सामने लकड़ी का जीना था। उन्हें भान न रहा। धम् पे ललाट टकरा गया। लहू का झरना फूट पड़ा। मैंने दौड़कर उन्हें सम्हाला। थोड़े से उपचार के बाद उन्होंने मुझे आंखे खोल कर देखा। वे रो पड़े, चिल्लाने लगे; "अखिल ! दुनया नंगी है। छल भरी उंचाईयों की दुनियां वास्तव में नंगा है।" मैंने थैली निकाली और छन्न् से एक हजार रुपयों की ढेरी लगा दी। सबकी आँखें दमक उठीं। बड़े अकाउंटेन्ट भी आ पहुँचे थे और दरवाजे की देहरी पर ठिठककर अचम्भित दृष्टि से यह सब देख रहे थे।

मैंने कहा, 'चाचा ये रुपये जर्जरित इन्सानों ने मुझे दिये हैं। मिल की मशीनों को रात दिन अपना खून देने वाले मजदूरों ने यह सब दिया है।' नरहरि चाचा ने मुझे खींच कर हृदय से लगा लिया और खूब रोये। मैं आँखें भर कर जहर के कटोरे की ओर देख रहा था, ज़िसमें मौत की तरलता परास्त सी थमी हुई थी।

—————

तूफान

तारों से भरी रात में कांत अपने शयन-कक्ष की खिड़की खोले विचार मग्न बैठा था। चारों ओर घनी नीरवता थी, और सामने की सूनी सड़क पर दूर तक बिजली के लेम्पों की लम्बी कतार, किसी के मन में समायी हुई प्रतीक्षा की कठिन घड़ियों की तरह जल रही थी। रात ठण्डी थी; और हल्की हवा के मन्द झोंके मां की ममता की तरह शहर को दुलरा रहे थे। कांत की नींद बिल्कुल उड़ चुकी थी। सोचते सोचते, कभी वह जैसे चौंक उठता था, और पास ही पलंग पर सोई हुई प्रगाढ़ निन्द्रा में लीन, अपनी पत्नी निर्मला को देख लेता था। उधर एक कोने में टेबल लेम्प के आसपास मेज पर दो-तीन किताबें अनाथ बच्चों की तरह बेतरतीब पड़ी थीं। एक पुस्तक खुली हुई पड़ी थी। उसका इक्कीसवां पृष्ठ बीच में फरफर कर उठता था। और कमरे की नीरवता को क्षण भर के लिये भंग कर देता था। एक बार तो कांत अचानक किसी अदृष्ट इशारे पर अधीर होकर अचेतन निर्मला के सिरहाने जाकर खड़ा हो गया। वह अपलक देखने लगा कि पत्नी के एक खुले स्तन से चिपटा हुआ उसका प्यारा बच्चा चपक-चपक दूध पी रहा है। दूध पीने की इस क्रिया को वह मूर्त्तिवत् बहुत

देर तक देखता रहा। न जाने इसके पार वह किस बिन्दु को देख रहा था। और न जाने किस सत्य को झलमलाते परदों की ओट में खोज रहा था। कुछ देर वह इसी अवस्था में डूबा रहा। फिर ध्यान टूटा तो वह आगे बढ़ा, और शृंगारदान में लगे बेलबूटेदार रंगीन दर्पण में कुछ देर तक अपना चेहरा देखता रहा। मेज पर खुली पुस्तक का इक्कीसवां पृष्ठ अब अपनी लिखावट को उभार कर निष्पन्द खुला पड़ा था। कांत सरसराती हवा की तरह खुले पृष्ठ के नजदीक आया; और सिरे का एक वाक्य मन ही मन पढ़ने लगा। उसने पढ़ा, 'जब काली दाढ़ी वाले उद्भ्रान्त युवक ने तीसरी मंजिल से अपने प्यारे बच्चे को नीचे फेंक दिया, तो क्षण मात्र में हां कोमल शिशु पत्थरों से टकरा कर चूर चूर हो गया।' आगे फिर उसने विस्फारित आंखों से पढ़ा, 'दूसरे दिन पति-पत्नी दोनों ने विषपान कर लिया। और आलिंगन पाश में बंध कर हमेशा के लिये सो गये।' कांत को अपने हृदय की धड़कनें स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं। वह कुर्सी खींचकर, हांफते हुये धम् से बैठ गया। दूसरे ही क्षण उसने उस जलते हुये पृष्ठ पर कागज का टुकड़ा रक्खा और पुस्तक बन्द कर दी। उसने पलट कर खिड़की से बाहर दूर तक जलती हुई बिजली की लम्बी कतार को एक बार ध्यान पूर्वक देखा। और उसने देखा कि स्वच्छ गगन में तारे भी मगन होकर हँस रहे हैं।...फिर उसने अपने शयन कक्ष में चारों ओर दृष्टि घुमाई। उसकी दृष्टि पत्नी पर आकर ठिठकी। उसने देखा कि सुख व शान्ति की घनी तरलता उसकी मुन्दी पलकों पर मन्थरगति से लहरा रही है।

किताब की मोटी जिल्द पर उसने दोनों कुहनियां टेक दीं और ललाट को हथेलियों पर धर अंतर्लीन हो गया। कुछ क्षणों बाद जब अधीर होकर उसने अपना चेहरा ऊपर उठाया, तो वह उद्भ्रांत था। वह उठा और प्रचण्ड उद्वेलन में जल्दी जल्दी टहलने लगा। उसके ओंठ फरफराने लगे और दोनों हाथों की मुट्ठियां भी बंध गईं। मानों उसका कोई अपराध उसे भीतर ही भीतर कचोटने लगा हो मानों कोई अन्तर्निविष्ट रह रहकर उसे सुइयां चुभाने लगा हो। वह उठा, अंतर्द्वन्द्व की प्रखरता में उसने पत्नी को जगाया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। कोमल शिशु के मुंह से स्तन छुट गया तो वह जोर से चिल्ला उठा। कांत ने भर्रायी आवाज़ में कहा कि वह दफ्तर जा रहा है। दफ्तर में आग लग गई है। पत्नी कुछ बोले इसके पहिले ही वह खट खट जीना उतर गया। निर्मला ने खिड़की से देखा कि लैम्पों की लम्बी कतार के नीचे कांत लम्बे डग भरता हुआ चला जा रहा है। प्रशस्त पक्की सड़कों को पार करता हुआ वह गन्दे और दुर्गन्धयुक्त मुहल्लों के मोड़ पर आ पहुँचा। इस समय दो बज रहे थे। कुछ क्षण ठहर कर उसने कुछ सोचा। किंतु फिर उसे किसी ने भीतर से धक्का दिया और वह तीव्रता से गन्दे मुहल्लों की ओर मुड़ गया। आखिर वह एक सकड़ी गली के कोने पर आकर रुक गया। पास ही जीर्णशीर्ण घर के बरामदे में एक युवक दमे से पीड़ित होकर उसासें भर रहा था। कान्त ने जब हिचकते हुये पूछा कि यहाँ छैल बिहारी बाबू कहाँ रहते हैं; तो वह अपनी पीड़ा को बरबस समेट कर नीचे आया और गली

में घुसकर कांत को छैल का घर बतला दिया। कांत ने बड़ा साहस बटोर कर दर्वाजे की अर्गला को खन खनाया। दो तीन बार आवाज़ करने के बाद भीतर से एक क्षीण-डूबे हुये नारी स्वर ने कहा 'आ रही हूँ', कांत का हृदय धड़कने लगा। उसने सोचा घर में केवल पत्नी ही है छैल नहीं है; वह उससे क्या कहे और किस तरह अपना अपराध स्वीकार करे; और किस तरह नारी के तीव्र आक्रोश का सामना करे। किसी समाधान तक पहुँचने के पहिले ही किवाड़ खुल गये। दुर्बल क्षीण नारी विक्षिप्त सी सामने उपस्थित थी। उसके एक हाथ में जो टीन की चिमनी जल रही थी, उसकी मैली-पीली जोत से काला धुआं भस भस ऊपर उठ रहा था। नवीन पुरुष को देखकर उसने वस्त्र का फटा आंचल सम्हाला और एक दम पीछे हट गई। उसने आश्चर्य मिश्रित भय से कांत की ओर देखा। कांत ने कहा, 'मैं हूँ, मैनेजर, छैल मेरे ही दफ्तर में काम करता था'। छैल की पत्नी ने पलकें नीचे झुकालीं।

'छैल कहां है'? उसने कहा कि वह शाम से ही कहीं बाहर निकल गया है; अभी लौटकर नहीं आया ..और फिर घबराई आवाज़ में बोली, 'अब और कुछ न करना मैनेजर साब। हम मर जायंगे मेरे पति बेगुनाह हैं। मैं हाथ जोड़ती हूँ पांव पड़ती हूँ बच्चे की बीमारी के कारण ही...

'तो बच्चा अब कैसा है? उत्तर नहीं मिला। चिमनी

से लगातार काला धुआं उसी तरह भस भस ऊपर उठ रहा था। धुंधली जोत की झलमलाहट के पार कान्त ने उसकी सजल आंखों को देखा, और देखा कि उस मां के कम्पित ओठों पर आत्मा की अतल गहराई में छुपी ममता कुचले हुये सांप की तरह तिलमिला रही है। ऊप· काला धुआं मंडराता जा रहा था। उसे कानों के आस पास सहस्रों समंदरों के तूफानों का घोर गर्जन सुनाई पड़ने लगा। और यह भी लगा जैसे उत्तुंग पर्वत श्रेणियां धड़ाधड़ धरती पर गिर रही हैं। वह डरा, जैसे हजारों लाल लाल आंखें घूरते हुये उसे घेर रही हैं। यह अवस्था उसकी तब टूटी जब उसे धीरे धीरे सिसकने की आवाज़ आई। उसने अपने आप में लौटकर देखा कि छैल की पत्नी फूट फूट कर रो रही है। वह नीची नज़र किये अपराधी की तरह खड़ा रहा; और क्षण भर बाद कांपते स्वरों में बोला, 'छैल को कह देना कि मैं कल सुबह आऊँगा' इतना कहकर कांत घर की ओर लौट पडा। जब वह घर पहुँचा तो उसने देखा कि पत्नी सुख की नींद सो रही है और बच्चा उसी तरह स्तन से चिपटा हुआ दूध पी रहा है। कुछ देर मां से चिपटे हुये शिशु को वह देखता रहा। इस समय उसके मन में भयंकर ग्लानि व्याप रही थी। वह अब अपनों को ही पराया समझने लगा। उसे अब अपनों से ही घृणा होने लगी। उसे शायद लग रहा था कि जो अपराध उससे हो गया है उसके कुपरिणाम से उसे छुटकारा नहीं मिल सकता। बत्ती बुझाकर वह बिस्तर पर पड़ गया। उसने अन्तर्द्वन्द्व को बांधकर सो जाने का प्रयत्न किया। किन्तु उद्वेलन किसी भी प्रकार कम नहीं

हुआ। फिर वह उठकर खिड़की के पास आया। हवा कुछ तेज बहने लगी थी। सामने की सीधी चलती सड़क को काटती हुई दूसरी आड़ी सड़क पर बरगत के पेड़ के पास वाली हवेली से, बूढ़ी मालदार मालकिन के कंठ से निसृत प्रभाती के अटपटे बोल हवा में लहराने लगे। बरगत की घनी लटें कांपते हुये पत्तों के साथ धीरे धीरे झूलने लगी थीं। कान्त की आँखें उस झूमते हुये धुंधले बरगत पर आकर अटक गईं। यकायक घनी लटों के बीच उसे कोई सफेद सी वस्तु लटकती हुई दिखाई पड़ी। वह आश्चर्य से देखने लगा। पहले तो उसे लगा कि वह लटकने वाली वस्तु शायद बरगद की कोई बड़ी लम्बी लट है। फिर अनुमान हुआ कि लकड़ी का कोई लम्बा—मोटा पटिया लटक रहा है। घांस के बंडल का भी उसे आभास हो रहा था। उसकी रात भर की बेचैनी, इसी एक वस्तु के कारण जैसे धीरे धीरे निःशेष सी हो गई; और मस्तिष्क में एक दूसरी ी आंधी सनन् सनन् बहमे लगी। वह अधीर हो उठा कि वह लटकमे वाली वस्तु आखिर क्या है? अंधेरा कुछ कम हुआ, और धुन्धला सबेरा झानी चादर की तरह चारों ओर फैल गया। इसी समय ऊंची हवेली की चौथी मंजिल के एकान्त कमरे से झीना झीना धुआं भी उठने लगा। प्रति दिन हवेली का जवान मालिक और उसकी पत्नी अपने आराध्य की पूजा करते थे; और अग्नि में सुगन्धित द्रव्यों के साथ घीं भी होमते थे। उसी होम का लहराता धुआं आज भी झरोखे से बाहर निकलने लगा था। कान्त निनिमेष बरगद के झुरमुट में देख रहा था। धुंधला पन

भी कम हुआ; और अब वह लटकने वाली वस्तु एक सुफेद लम्बी गठरी की तरह लगने लगी। गठरी के सिरे पर मोटी डाल के पास घड़े की तरह एक काला घेरा भी दिखलाई पड़ने लगा। कान्त बहुत असमंजस में था कि आखिर इस रूप बदलती हुई वस्तु का रहस्य क्या है!

किरणें भी निकल आईं; और पीला घाम चारों ओर फैल गया। देखते-देखते कान्त अचानक चौंक पड़ा उसने स्पष्ट देखा कि वह लटकने वाली वस्तु मनुष्य का शरीर है! हृदय तीव्र गति से धड़कने लगा। हवेली में सुगन्धित द्रव्यों का होम उसी तरह चल रहा था पूजागृह के पास वाले सजे सजाये दूसरे कमरे से रेडियो पर चलने वाले भैरवी के स्वर भी अब बाहर लहराने लगे थे।... .. और बरगद के पेड़ पर लाश झूल रही थी। पेड़ के आस-पास लोगों की भीड़ बढ़ गई। निष्प्रभ, उद्भ्रान्त कान्त इस स्वर्ण-विहान में निराधार सा खड़ा, विस्फारित आँखों से दूर लाश को देख रहा था। कान्त के शयन कक्ष की खिड़की के नीचे लोगों के छोटे से झुण्ड में एक लड़का कह रहा था, ...'और वृक्ष के तने पर एक चिट्ठी भी चिपकी हुई है उसमें केवल लिखा है; छैल विहारी शर्मा, कोयला गली, घर नम्बर ४४' कान्त ने भी सुना। उसकी आँखें फटी सी रह गईं। उसने शून्य में देखा; गन्दी अंधेरी कोठरी में छैल की दुर्बल पत्नी हाथ में चिमनी लिये खड़ी है। चिमनी की पीली लौ से काला धुआं उठ रहा है। धुयें के बादलों से घोर गर्जन होने लगा है। कान्त इस विकृत मनोदशा को लेकर लड़खड़ाता उठा;

और बिस्तर पर आकर पड़ गया। सात बज चुके थे। निर्मला की नींद खुल गई। छोटा बच्चा किलकने लगा, और आठ वर्ष का बड़ा लड़का नीलम मेज पर पड़ी पुस्तकों को उलटने पलटने लगा। निर्मला उठी और कान्त को हिलाकर पूछा, 'आग बुझ गई'? कान्त बेसुध था। निर्मला ने ललाट छुआ तो उसे तीव्र ज्वर का आभास हुआ। वह यकायक विचलित हो उठी। नीलम वहीं इक्कीसवां पृष्ठ खोलकर पढ़ने लगा,'.....और जब पति पत्नी दोनों विष खाकर संसार छोड़ गये तो उनका आठ वर्षीय बालक अनाथ हो गया! आज तो वह सड़कों पर दौड़-दौड़ कर बाबू-बाबू कहता लोगों से पैसे मांगता फिरता है'। निर्मला ने झल्लाकर कहा पुस्तक बन्द करदो नीलम! तुम्हारे बाबूजी को एकसौ पांच डिग्री बुखार है। जल्दी नीचे जाकर भोला को बुला लाओ।'

कान्त चेतना शून्य पड़ा था। उसके अस्त व्यस्त बाल ललाट पर बे तरतीब बिखरे पड़े थे ... और दूर कोलाहल से ऊपर छैल की लाश बरगद के पेड़ पर झूल रही थी। पास की गगन चुम्बी हवेली से सुगन्धित द्रव्यों का उठता हुआ धुआं उसी तरह बह रहा था। ......एक बार तेज बुखार में भी कान्त ने ओंठ फरफराये और चिल्ला उठा तूफान... तूफान... तूफान।........

[सत्ताघन]

उन्माद और विभीषिका

चढ़ते जेठ की चढ़ती दोपहरी थी। आँधियाँ चल रही थीं, और धूल भरे रास्तों पर छोटे-छोटे तिनके पवन-वेग में घूमती धूल के चक्करों में फँस कर घूमते-चकराते-तिलमिलाते, इधर उधर उड़ रहे थे। निर्बल और दीन होते हुए भी वे तिनके अन्धड़ का सामना कर रहे थे। बार बार हार खाकर भी वे उस तूफान को परास्त कर डालने के लिये, धूल-कणों की सहायता से फिर-फिर आगे फुदक रहे थे। आँधियों में जैसे जीत का भयानक घोष था। बड़े बड़े वृक्ष धरती चूम रहे थे और दर्द भरी चीखों के स्वर जैसे हवा के स-र-ग-म पर लहरा रहे थे। दिशाओं में ऐसा धुआँधार छा गया था कि रास्ता सूझना कठिन हो रहा था। किन्तु लीला लू के थपेड़े सह कर भी कच्चे रास्ते पर चली ही जा रही थी। अपने ध्येय की उन्मत्त लीला, इस तूफानी झंझा से क्या डरती; जबकि वह दुनियां की तानाकशियों और जन श्रुतियों के प्रबल प्रवाह में भी निर्भीकता से आगे बढ़ती जा रही थी। लीला उन दिनों आम चर्चा का विषय बनी हुई थी। यौवन में प्रवेश करने का अपराध जब उस पर लद गया; और अपराधिनी के रूप में रह कर भी जब उसने चार वर्ष गुजार दिये तो व्यस्त दुनियादार और अधिक

विचलित हो उठे। लीला में सौंदर्य शेष है या नहीं, यह भी उनके विवाद का प्रमुख विषय बन गया। जो बहुधन्धी उसे 'सुन्दर' घोषित करने के लिए अब तैयार नहीं थे, वे कहते थे—'उसका रूप जल गया है', वह ऐसी अस्त-व्यस्त रहने लगी है कि समय और स्थान के अनुसार साड़ियाँ बदलती ही नहीं है। चार वर्ष पहले जब वह कॉलेज जाती थी तो कैसी रूपवान लगती थी! कैसी ओंठो पर लाली उजागर रहती थी; और मुखमुद्रा में एक उज्जवलता, एक फेनिल सा गोरापन छलकता रहता था... देखो न, आज तो वह पतझड़ सी लगती है। वे हँसती हुई लुभावनी आँखें अब न जाने कहाँ डूबी रह जाती हैं? न जाने किन कोशिशों ने उसे उजाड़ की ओर उन्मुख कर दिया है? वह अबतो मुर्झाती लतिका की तरह निष्प्रभ-निस्तेज जिन्दगी का भार लिये जैसे यौवन और जीवन की गति को कुण्ठित कर रुकी पड़ी है।'......और ऐसी कई चरित्र सम्बन्धी बातें वे कहते थे। दूसरे समकक्षी आलोचक उसे कुपथगामिनी तक घोषित कर चुके थे। लीला का ध्यान इस ओर नहीं था। वह तो बहुत खोयी सी किन्तु व्यस्त रहती थी। जिन्होंने उसके अन्तर को छुआ था, वे कहते थे—'लीला का सौंदर्य अब दुगुना खिल उठा है। चार वर्ष पहले जो उसमें 'ग्रेस' था, वह अब ज्ञान का सम्बल पाकर अधिक प्राणवान हो उठा है। रात दिन भटकने से लीला साँवली अवश्य हो गई है; किन्तु ज्ञान की गरिमा, मर मिटने की साध एवं बलिदान की आतुर भावनाएँ मुखमुद्रा पर ऐसी तैर आई हैं कि उसकी बोलती हुई आँखों से सौंदर्य की मूकपरिभाषा

झाँक उठती है। पहले वह अधिक रूपवान और गौरवर्ण थी; और अब अधिक सलौनी व आकर्षक बन गई है। उसकी कलापूर्ण लम्बी-नुकीली उंगलियों में झुकाव उसी तरह गिरते हैं; किन्तु आज उन झुकावों में जो वाणी समा गई है, वह कभी-कभी लीला के मन की आकुलता-व्याकुलता की अभिव्यक्ति के लिये झिलमिलाते पारदर्शी पर्दों के पीछे उतरने वाली देव दूतिका की तरह उसकी लचकती उँगलियों से बाहर बिखर पड़ती है। और उसकी उद्वेलित भावनाओं में तैरते-उतराते परिपक्व ध्येय की सजीवता भी उन पैनी उँगलियों से स्पष्ट झर-झर पड़ती है। लीला में शौर्य और मधुरता साथ साथ हैं। इस नारीत्व में ऐसी आभा है जिसके प्रकाश में ज्ञान, बुद्धि, पराक्रम और आन्तरीक सौन्दर्य आस पास तैरते से लगते हैं... .....और वे उसकी बिखरी उड़ती अवहेलित अलकें जो बतलाती हैं कि लीला स्वयं के प्रति लापर्वाह है, एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ने हुए जहाज के मस्तूल की तरह फर फर लहराती रहती है। सो लीला अपनी धुन में मशगूल रहती थी। कौन क्या कहता है, उसे पर्वाह नहीं थी। बी० ए० पास कर लेने के बाद उसने कॉलेज छोड़ दिया था और अधिक समय अब 'नव-क्रांति-समिति' की प्रवृत्तियों में ही खर्च कर देती थी। गाँवों में शिक्षा का प्रसार तो उसका मुख्य उद्देश्य था ही; किन्तु उसके साथ वह शहरों में रंगमंचों पर, गाँवों की गिरती दशा, जमींदारों और जागीरदारों के जुल्म, शहर की सड़ी गली बस्तियों में मजदूरों की बदतर जिन्दगी और मध्यम श्रेणी की जलती हुई गृहस्थियों के चित्र प्रस्तुत करने

में समिति की मदद करती रहती थी। पिता डाक्टर थे और बड़े भाई वकालात करते थे........माँ पुराने विचारों की थी न, इसलिये वह विवाह के प्रश्नों को बार-बार छेड़ दिया करती थी। लीला उत्तर भी इतना सुलझा हुआ होता कि माँ को सन्तोष हो जाता था, और फिर कई दिनों तक वह इस विषय को छेड़ नहीं पाती थी। उसके विवाह की आवश्यकता उससे पहिले जिन सगे-सम्बन्धियों को थी वे अनर्गल वातावरण तैयार करने में चाहे व्यस्त रहते हों, किन्तु वे बेबस थे कि डाक्टर साहब के घर में केवल लीला की ही हठ चलती थी। सो—लीला जेठ की इस तपती दोपहरी में पास के गाँव जा रही थी। .. भोला समिति की ओर से गाँव में छोटा सा स्कूल चला रहा था। सात वर्ष पहले जब समिति ने अपना काम इस गाँव में शुरू किया था तब भोला अपढ़ था। मन में आग होते हुए भी निर्बल और असहाय था। वह रण आँगन में उस सिपाही की तरह था, जो धुआँधार लड़ाई के बीच निःशस्त्र हो। किन्तु शिक्षा ने जब उसे ज्ञान और वाणी के शस्त्रों से सुसज्जित कर दिया, तब उसमें अमित पराक्रम का स्रोत जैसे उभड़ पड़ा। वह समिति का सबसे अधिक सुदृढ़ कार्यकर्ता बन गया। वह समिति के काम के लिये जिवन की बाजी लगा देने के लिये भी तैयार रहने लगा। .... सो लीला अंधड़ में चली जा रही थी। गाँव के नजदीक पहुँचते-पहुँचते उसने देखा कि दूर लाश लिये कुछ लोग आ रहे हैं। उसने उड़ती धूल में देखा कि आगे-आगे भोला है और उसके हाथ में कंडे से भीना लहराता धुआँ उठ रहा है।

लोग नजदीक आये और भोला लीला को देख कर रुक गया वह बोला—'पिताजी हैं......आज हमेशा के लिये हमें छोड़े जा रहे हैं।' लीला हतप्रभ सी खड़ी रही। इस पराक्रमी किसान की पुरानी कथाएँ उसे याद हो आईं और जमींदारों के जुल्मों की वे सब बातें भी याद हो आईं, जो भोला ने उसे अपने बाप दादों का इतिहास बताते हुए कहीं थीं। कोड़ों के और आग की शलाखाओं के वे निशान भी उसने भोला के बाप के शरीर पर देखे थे।

वह नत मस्तक हुई और चिर निन्द्रा में लीन, जीवन-संग्राम के उस बहादुर सिपाही को उसने झुककर प्रणाम किया। आँधी पूर्ववत् चल रही थी. और भोला गुलाल मिश्रित लाल-लाल कंडे से उठते हुए लहराते धुएँ में, जूझते-जूझते वृक्षों के आस पास अंधड़ की गति-मति परख रहा था। दो क्षण की असामान्य नीरवता को चीरते हुए भोला ने कहा,—लीला! अब मुझे तुम आँधी और तूफान बन जाने दो। बापू के निर्बल-विशीर्ण शरीर पर उभरा हुआ तप्त लोहे की छड़ो का प्रत्येक निशान मेरे लिये एक-एक चुनौती है..... इस हैवानियत से भरी दुनिया का ढाँचा बदलने में कहीं-कहीं रास्ते भी बदलने होंगे क्या सोचती हो तुम? लीला देख रही थी कि भोला क्रोध से काँप रहा है। वह अट पटे बोलों में फरफराते ओठों से जो कुछ भी कह रहा है, लगता है वह वास्तव में लाखों गृहस्थियों की प्रतिनिधि वाणी है। लीला ने कहा - 'भोला! जैसी सरस्वती तुम्हें प्राप्त हो गई है, वैसी सरस्वती हमें लाखों अशिक्षितों में विकसित करना है। मूकता और

उन्माद और विभीषिका

'मृदुता से भरे इन्किलाब का उजेला पटाखे की चकरी की तरह वहीं शूं-शूं करता डूब जाता है।..... यदि मार्ग बदलने होंगे तो हम अवश्य बदलेंगे.........सबसे पहले शोषितों में मानव होने का आभास पैदा करना होगा, ।.. ... साथ के लोग अधिर हो उठे थे, और भोला के हाथ का कंडा भी बहुत धुआँ उगलने लग गया था। भोला ने कदम उठा लिये और राम नाम का स्वर उठ पड़ा। लीला निर्निमेष देखती रही। वह शायद सोचती रही कि वह भोला का समाधान नहीं कर सकी है।......हाँ एक वस्तु उसे अवश्य मिल गई कि निकट भविष्य में जो नाटक रंग मंच पर लाया जाने वाला है, उसकी एक भूमिका के लिये भोला का चुनाव ठीक हुआ है।

'नव-क्रान्ति समिति' का "उन्माद और विभीषिका" नाटक रंग मंच पर आने वाला है, यह चर्चा शहर में चल पड़ी। प्रस्तुत नाटक में छोटी-बड़ी कई भूमिकाएँ थीं। किन्तु 'विभीषिका' और 'शोषित' ये दो मुख्य थीं! विभीषिका का अभिनय स्वयं लीला करने वाली थी और शोषित का अभिनय भोला। विनय मोहन ने शायद भोला के वंशजों की जिन्दगियों की तस्वीर सामने रख कर ही कहानी के घुमाव अंकित किये थे। नाटक के अंतिम अंश में दिखलाया गया कि 'विभीषिका' थिरक रही है। लाखों शोषित-पीड़ित हाहाकार कर रहे हैं। 'विभीषिका' उन चीखों को सुन कर किलकिलाती, राक्षसी अट्टहास कर रही है। कभी-कभी वह स्वर्ण के उत्तुंग पहाड़ पर, कूदती-फाँदती आसमान के

खिलते तारों को मुट्ठी में भरने का प्रयत्न कर रही है। .... और एक ओर लाशों के ढेर पर शोषित खड़ा है। वह केवल हड्डियों का ढाँचा मात्र है। उसकी आँखों से ज्वालाएँ प्रस्फुटित हो रही हैं।........देखते ही देखते उसे एक साथी पिस्तौल लाकर दे देता है। जैसे ही वह पूँजीवाद विभीषिका की ओर निशाना तानता है, 'सद्‌बुद्धि' आ जाती है। वह रोकती है। कहती है, 'उन्मादी इसी अंतिम तरीके को प्रथम मत बनाओ। इस ज्वाला में अभी थोड़ा ईंधन और डालो। मेरी मान जाओ। मैं तुम्हारे लाखों भाई-बहिनों के पास जा रही हूं।.. .. हर दृष्टि से इन्किलाब में सबलता आ जाने दो। संघर्ष को मैं नहीं रोक रही हूँ। ... तुम्हारी आग की निधि को अभी बढ़ने दो, तुम्हें तो क्रांति-दूत बनना है'। शोषित रुक जाता है। उधर विभीषिका चिन्तातुर हो स्वर्ण पर्वत पर उदास बैठ जाती है। वह सोच रही है क इस मृत्यु में उसकी जिन्दगी नढ़जाने वाली थी।.....लेकिन उल्टा हुआ... अब तो चारों ओर से महानाश झाँक रहा है। दूसरी ओर से क्रांति-गीत गाती हुई लम्बी कतार 'मार्च' करती चली आ रही है। ... .. बस नाटक यहीं समाप्त हो जाता है।

सो नाटक खेलने का दिन आखिर आ गया। थियेटर-हॉल खचा-खच भर चुका था। लम्बी प्रतीक्षा के बाद यवनिका उठी, और नाटक का प्रथम दृश्य खेला जाने लगा। कहानी आगे बढ़ रही थी, और विस्मय एवं उद्वेग के स्थलों पर तालियाँ गड़-गड़ायी जा रही थीं। आखिर नाटक के अन्तिम दृश्य के लिये भी यवनिका उठी। पूँजी-

उन्माद और विभीषिका

याद की विभीषिका का अभिनय लीला कर रही थी, और शोषित बना था भोला। विभीषिका (लीला) प्रलयंकारी नाच नाच रही थी, स्वर्ण-शिखरों पर तारों से खेल खेल रही थी। हँस रही थी—किलक रही थी। ......और शोषित (भोला) लाशों के ढेर पर खड़ा होकर विस्फारित आँखों से ज्वालाएं बरसा रहा था। उस पर उन्माद छा रहा था। वह क्रोध से काँप रहा था। अचानक एक साथी ने आकर उसे पिस्तौल देदी। उसने विभीषिका (लीला) की ओर पिस्तौल तान दी।......'सद्बुद्धि' मंच पर उपस्थित हो इसके पहिले ही—दन्-दन् गोलियाँ चल पड़ीं। दर्शकों की ओर से तालियाँ गड़्-गड़ा उठीं।

विभीषिका (लीला) धम् से मंच पर आ गिरी। लोग दौड़ पड़े। दर्शकों में कोलाहल मच गया। दौड़ो-भगो-पकड़ो का शोरगुल उठ पड़ा। लीला (विभीषिका) समाप्त हो गई। भोला (शोषित) को लोगों ने कस कर पकड़ लिया। वह परदों पर चित्रित की हुई लाल लाल ज्वालाओं को अपलक देख रहा था। वह उन्माद में शराबोर था।... . एक बार वह होश में आया, तो लीला की लाश को देख कर चीख उठा—लीला बहिन! मैं, मैं नहीं था, और तुम, तुम नहीं थीं।.... दो क्षण बाद ऊपर की बहती हुई आँखें फिर लाल हो उठीं, और सबने देखा कि रंग मंच पर उठे हुए सोने के पहाड़ को देखकर वह फिर पिस्तौल माँग रहा है। ..... .

———————

[पैसर]

राधा बेटी

ट्रेन चीख उठी है। विदाई के रूमाल बाहर निकल आये हैं। प्लेटफार्म पर सन्नाटा फैल रहा है। बैठने वाले बैठ चुके हैं और उतरने वाले उतर चुके हैं। एकाध कोई रह गया है वह दौड़ता चला आ रहा है। गाड़ी में भीड़ इतनी है कि डिब्बों की खिड़कियां तक मुसाफिरों से उफना रही हैं। मुसाफिरों के इस सघन झुरमुट में कितने ही विदाई के आँसू, कितने ही विदा देने वाले आंसुओं से ओझल रहने वाले हैं। हरदास छह वर्ष की बिटिया को गोद में उठाकर 'गार्ड' की अन्तिम हरी सूचना की प्रतीक्षा में सतर्क खड़ा है। उसकी पत्नी, कमला भीतर बैठी है। आँसू हैं। वस्तुतः रो रही है। वह बच्चों को लेकर मायके जा रही है। मायके जानेवाली स्त्रियां प्रायः प्रसन्न होती हैं। किन्तु हरदास की पत्नी को जाने क्या हो गया है कि रो रही है। दिवाली का त्यौहार निकट आ गया है। शहर में अभी से जैसे अधखिले यौवन की प्रथम अरुणाई खिल खिलाने लगी है। रंग-बिरंगी अट्टालिकायें नये नये रंगों से दुगुनी उन्नत और विशाल दीखने लगी हैं। बात कुछ ऐसी है कि अंधेरे कुये से जल निकाल कर मुसाफिर अपनी प्यास बुझा लेता है, किन्तु ये उत्तुंग मंजिलों के मतवाले

राधा बेटी

मानव अंधियारी गृहस्थियों से रक्त निकालकर अपनी प्यास को उभाड़ लेते हैं। जो रंग पिछले वर्ष कम आभावान् था, इस वर्ष अधिक चमकीला लग रहा है। आने वाले वर्ष में और भी अधिक चमकेगा, क्योंकि भविष्य में प्रस्फुटित होने वाले शोषण के कण आज के रंग में स्पष्ट झलक रहे हैं।......सो शहर रंगीनियां पी रहा है।

हरदास अपनी पत्नी कमला और तीन बच्चों को अपने ससुराल भेज रहा है। उसका दिल टूट रहा है; फिर भी दृढ़ता से वह अपनी बेटी राधा को गोद में लेकर खड़ा है। लोगदुनियां क्या कहेगी, यह सोच कर वह आंसुओं को बरबस रोक रहा है। आग को छुपा रहा है। एक हाथ से जिस प्यार का वह गला घोंट रहा है, दूसरे हाथ से उसी घायल प्यार को वह सहला रहा है। दिवाली है।

सेठ के घर वैभव ने नाचने के लिये अभी से छुनुन-छुनुन घुंघरू बांध लिये हैं। हरदास मुनीम है। तीन बच्चों और पत्नी के साथ वह दिवाली के दिन मुस्करा भी नहीं सकता। जिन्दगी के फीके दिनों में तो वह जैसे तैसे जी लेता है; किन्तु त्यौहार के दिन उसकी अभागी गृहस्थी में जो निविड़ अंधकार तांडव कर उठेगा उसकी भयंकरता को वह कदापि सहन न कर सकेगा ...... गाड़ी चीख उठी है। वह खोया खोया सा खड़ा है। गोद में राधा बाप को बार बार चूम लेती है। हरदास उसे भीतर बैठाने का प्रयत्न करता है तो सिसक उठती है। कई दिनों पहिले से

रोटियों और लाशों के जुलूस

हरदास ने अपने बच्चों को कह रक्खा है कि वह दिवाली पर उनके लिये रसगुल्ले लायेगा और नन्ही सी राधा के लिये, छोटीसी रंगीन रेशमी चूनर ला देगा। उसने कहा था कि स्वराज्य हो गया है इसलिये सरकार अपने कानूनों द्वारा गुमाश्तों का जीवन स्तर ऊपर उठायेगी। और उसका अनुमान था कि करीब करीब इस आनेवाली दिवाली तक उसका वेतन दुगुना हो जायगा। उसने कमला के सामने गृहस्थी की आवश्यकताओं को पूरा करने का सारा कार्यक्रम तैयार कर लिया था। सारा हिसाब ठीक तरह से जमा लिया था। और इस आधार पर कुछ बहुत जरूरी चीजों के लिये कर्ज भी ले लिया था। उसने जोर दे देकर यह बात पक्की कर दी थी कि आनेवाली दिवाली हरगिज बेरहम नहीं हो सकती। सेठ के घर से एक लाल पगड़ी और दुपट्टा भले ही न मिले लेकिन उसकी गृहस्थी में सरकारी कानून तो अवश्य ही रोशनी जलायेगा ...... परन्तु आज! हां आज वह प्लेटफार्म पर खड़ा है! अपनों को विदा दे रहा है! ....एन्जिन ढेर-ढेर धुआं उगल रहा है और बेटी राधा रो रही है। वह मामा के घर नहीं जाना चाहती। उसे रेशमी चूनर चाहिये। वह दीये जलायेगी फुलझड़ी झड़ायेगी, नाचेगी, काजल लगायेगी, बिंदिया लगायेगी। वह बार बार यह कह रही है। वह दर्द की तरह मचल उठी है हरदास उसे बीच बीच में कभी चपत लगा देता है फिर चूम लेता है। दसवर्ष का रामदास गुमशुम कमला के पास बैठा है, और एक वर्ष का नन्हा शिशु उसके आंचल में छुपा छुपा दूध पी रहा है। राधा नहीं मानती। वह रो

रही है। वह रो रही है कि सारे वर्ग की जिन्दगियां रो रही हैं। एक नहीं, लाखों-करोड़ों गृहस्थियां उसासें भर रही हैं। हर अंधकार का हर कण राधा की रुलाई में आ बसा है हर प्यार का हर कुचला हुआ झुलसा हुआ प्राण राधा के रुदन में क्रन्दन कर उठा है। और वह है गुमाश्ते की पत्नी कमला जो मौन बैठी है। अन्धड़ के घेरे में चुप चाप है। चूल्हे पर चढ़ी हुई हंडिया की तरह जल रही है, और जी रही है। उसकी निःश्वासों पर भी लोक लाज का पहरा लगा हुआ है; नहीं तो वह अभी फूट फूट कर रो पड़ती और कह देती कि वह यहीं रहेगी-मायके नहीं जायेगी। मां-बाप की छातियों पर बोझ नहीं डालेगी। लेकिन वह कनखियों से देख रही है कि पति का दिल टूट रहा है। वह अपने आप में नहीं है। कमला सोच रही है। गाड़ी बिलकुल छूटने की तैयारी में है। राधा बाप की गोद से दूर नहीं होना चाहती हरदास की छाती फट पड़ना चाहती है, कि उससे सब छूट रहा है दुनियां उसे खा रही है। उससे उसके प्यारे बच्चे जैसे छीने जा रहे हैं। हरदास हर दृष्टि से दास है। वह रो नहीं सकता; बोल नहीं सकता और कांपते ओठों पर मन की कसमसाहट को तौल नहीं सकता।

रात का नौ बजा है। आसमान में बादलों के काले सफेद टुकड़ों के बीच धुला हुआ चांद बह रहा है और धुंधले सितारे लड़खड़ाती जिन्दगियों की तरह टिम टिमा रहे हैं।...गाड़ी ने निःश्वास छोड़ी और पहिये खुल पड़े। राधा को कमला ने भीतर खींच लिया। हरदास के चेहरे

पर रूलाई उभर आई और वह गाड़ी की खिड़की पकड़ कर धीरे धीरे साथ चलने लगा। राधा गला फाड़ फाड़ कर रो रही है, गाड़ी चीख रही है, और कमला हरदास की आंखों में आंखे डालकर अपलक गाड़ी की खिड़की में राधा को सम्हाले तिनके की तरह बही जा रही है। गाड़ी की गति तेज हो चली है। अब हरदास सिगनल के पोल को पकड़कर खड़ा हो गया है। गाड़ी के अन्तिम डिब्बे की लाल रोशनी को ठगासा देख रहा है।

........आज दिवाली है हरदास सुबह से ही सेठ की हवेली पर काम में जुटा हुआ है। बहियों पर काली स्याही के रूप में अपने खून की बून्दें भर भरा रहा है। उसे एक क्षण भी सोचने का अवकाश नहीं है। कभी लिखते २ आंखों में राधा आ जाती है, प्राणों में चुपचाप कमला का आहत दिल आ बसता है और शून्य में रामदास व नन्हे शिशु की स्मृति जैसे चित्रित हो उठती है। किन्तु इन सब स्मृतियों को अधिक ताजा करने का उसे अवकाश नहीं है। वह लिख रहा है। रात हो आयी है। रंगबिरंगी रोशनी जवानी पर है।.. हां अब धीरे धीरे रोशनी बुझने लगी है। शायद बारह वज चुके हैं। सरकारी कानून वरदान की तरह इस दिवाली तक भी नहीं आया हां सेठ की दी हुई लाल पगड़ी अवश्य वह बांध रहा है। शायद अपनी मौत का कफन अपने सर पर कस रहा है। वह वेचारा नहीं समझ रहा है कि पगड़ी का यह चमकीला टुकड़ा उसकी तिलमिलाती गृहस्थी के वास्तविक

चित्रों पर (Iron Curtain) लोह-पर्दा डाल रहा है। .. सेठ पूजा में बैठे हैं और हरदास पगड़ी का अन्तिम जरीन पल्लू कस रहा है। अंगरेजी ढंग के कटे हुए बालों वाली सेठ की नातिन उछल उछलकर फुलझड़ी घुमा रही है। जब हरदास ने उस भाग्यवान मुन्नी को देखने के लिये अपनी आंखें उठाईं तो सामने तार घर का आदमी आकर खड़ा हो गया। हरदास ने कांपते हाथों तार लिया। और सेठ के ग्रेजुएट पुत्र ने मस्ती से वह तार पढ़ दिया Your Radha expired of Heartfailure..." तुम्हारी राधा हृदय-गति रुक जाने से चल बसी"

हरदास निर्जीव है। प्रस्तर मूर्तिसा अप्रतिभ खड़ा है। सर की पगड़ी के पेंच धीरे धीरे खुल रहे हैं। वह पूजा के कोठे में लक्ष्मी की छुन् छुन् आवाज सुन रहा है। हंसती हुई बिजलियां उसे घेरकर जल रही है। सेठ की मुन्नी उछल रही है। ग्रेजुएट पुत्र मस्ती से तकियों के बीच फंसा पड़ा है हरदास को जैसे सुनाई पड़ रहा है। राधा मचल कर कह रही है, 'मुझे रेशमी चूनर चाहिये—मैं काजल लगाऊंगी, मैं नाचूंगी ... मैं दीये जलाऊंगी... दिवाली पर हमें रसगुल्ले ला देना ..." गाड़ी चीख रही है।... गाड़ी के पहिये खुल पड़े हैं। गाड़ी भाग चली है... जिन्दगी छूट चली है। उसकी आत्मा के प्यार को भूत-पिशाच कूद कूद कर कुचल रहे हैं।...

...हरदास तार के कागज को मुट्ठी में बांधे खड़ा है, और उसकी आंखों से शोले बरस रहे हैं।

गोकुल की गाड़ी

गोकुल की गाड़ी गाँव से खेत तक चल-चल कर अब बूढ़ी हो गई है। उसके चक्कों की जवानी उड़ते-उड़ते बिलकुल उड़ गई और अब वे लकड़ी के ठोस पहिये इतने सड़ गये हैं कि न जाने चर्र-चर्र, चूं चूं कर कब धराशायी हो जावेंगे! सायकल, तांगा, मोटर, रेलगाड़ी और वायुयान, इन सबको उन पहियों ने अपनी गति बाँट दी है। गोकुल, काला-कलूटा किसान, जिसके सर के सफेद-सूखे बालों पर खुले आकाश में वायुयान मंडरा रहा है; कहता है कि जब उसके बाप ने बिहारी सुतार से ये चक्के बनवाये थे, तब शायद दुनिया में आग-पानी और भाप से चलने और उड़ने वाली इन 'उड़नल्लू' गाड़ियों का कहीं नाम तक नहीं था। हो सकता है नादान गोकुल अधिक कह रहा हो, लेकिन बिहारी का नाती, जो अपने बाप-दादों का धन्धा आज भी चला रहा है, कहता है कि गोकुल की गाड़ी के चक्के जब बने थे, उन दिनों दुनिया सुख में डूबी हुई थी और समय चक्र भी कई वर्षों तक रुका रह गया था! प्रमाण स्वरूप बिहारी के नाती के पास एक पुरानी वही अभी तक सुरक्षित रखी हुई है। उसके जर्जर पृष्ठों पर अभी तक गोकुल के बाप का नाम लिखा हुआ है। लिखावट

बहुत फीकी पड़ गई है, शायद चक्कों की बनवाई में शत-प्रतिशत शुद्ध चांदी का आधा रुपया अथवा बदले में ४० सेर ज्वार लेने की शर्त लिखी हुई है।

सो इसी गांव में जब पहले-पहल गांव के पटेल का लड़का शहर से मूंगिया मोटर लाया तो उसके आसपास सारा गांव इकट्ठा हो गया। उन चमकदार चांदी से पहियों की चाल-ढाल देख कर गोकुल ने भी अपने चंचल बैलों को रास खींच कर रोक लिया। उसने अनुमान लगाया कि यह मूंगिया रंगवाली मोटर गोरे लोगों के देश में अभी ही तैयार हुई है और सर्व प्रथम पटेल के लड़के ने ही इसे खरीदी है। सोचते सोचते वह विचारों में डूब गया। क्षण बीते, उसका मुख-मण्डल अभिमान से रक्ताभ हो उठा। उसके मन में आया कि यह अविष्कार दुनिया में एकदम नया है। सबसे पहले उसकी गाड़ी ने जन्म लिया है। लकड़ी के पटियों से गढ़ी यह गाड़ी कितनी पुरानी है! बिहारी के हाथ से गढ़े हुए ये ठोस पहिये कैसे मजबूत हैं! वह आश्वस्त होकर अपनी गाड़ी गांव के कच्चे रास्ते पर दौड़ा चला। उस बेचारे को क्या मालूम कि यह चमकीली मोटर, ये आग की लपटें, अब अपना अन्तिम दौर पूरा कर रही हैं। शहर जल रहे हैं; शहरवाले जल रहे हैं और लपलपाती ज्वालाएं अब गांवों को राख करने चली आ रही हैं। आठ आने के ये दो पहिये जब सड़ जायंगे तो भर्र-भर्र ऊपर उड़ते हुये उड़न खटोले और धूल उड़ाती मोटर की कर्ण कटु आवाज में कोई भी चर्र-मर्र–चूं चूं को नहीं सुनेगा!

[दिहुसर]

लुट जायगा, पेट पाताल चला जायगा। आँखें धंस जायेंगी और क्षीण दुखभरा पुकार 'उड़न्छू' सवारियों के कोलाहल में डूब जायगी। उन दिनों उसने इस सीमा तक नहीं सोचा था कि पटेल का लड़का गांव में मौत की प्रथम चिनगारी ले आया है। ये मशीनें खा जायेंगी—दुनिया ने गति पकड़ ली है। इतने वेगसे यह दुनिया न जाने कहां पहुँच जाना चाहती है! उसने नहीं जाना था कि टकरा कर दुनिया चूर-चूर हो जायगी। गांव के चौपाल पर लम्बी-लम्बी चर्चाओं के तारतम्य में शायद उसे आश्वासन मिल गया था। पटेल का बेटा उन दिनों कलकत्ते से वकालत पास करके कुछ दिनों के लिये गांव में आया था। विज्ञान की बातें बतलाते हुए उसने दृढ़ता पूर्वक कहा था कि मशीनों का आविष्कार इस लिये हुआ है कि दुनिया के बड़े बड़े काम थोड़े ही समय में पूरे किये जा सकें। समय, धन, और बल की बचत होगी और अन्य बड़े बड़े फायदों के साथ अपना देश भी लहलहा उठेगा। धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा। अमेरिका, इंगलैंड आदि देश मशीनों के बल थैलियां झन-झना रहे हैं। वहां खेती की भी अपार उन्नति हुई है। लकड़ी के हल बक्खर ईस वैज्ञानिक दुनिया में टिक नहीं सकते। दुनिया भाग रही है। हमें उसके साथ दौड़ना है, इत्यादि इत्यादि ..

गोकुल इस विराट-स्वप्न की अभिव्यक्ति पर झूम उठा था। बात बिलकुल झूठ भी नहीं थी। पश्चिम ने विज्ञान को पराकाष्ठा तक पहुँचाकर स्वर्ग को अपनी धरती पर

उतार लिया था। किन्तु देवत्व की मादकता में पश्चिम वालों ने धरती-आकाश एक कर अपनी सूझों को अधिक विस्तारित किया और मानवता को अपने बीच में निर्मूल कर डालने तक की बात सोच डाली। प्रगति ने फिर गति पकड़ी और वह उड़ी चिनगारियां लेकर। न्याय धर्म के पोथे जलने लगे और आदम के बेटों पर बम बरसने लगे।

..... दूसरे महायुद्ध के शुरू होने के पहले ही, पटेल का बेटा कलकत्ते लौट गया था। गोकुल की गाड़ी निरन्तर चल रही थी। मोटर के बाद तो उसने वायुयान, रेलगाड़ी, टैंक ट्रैक्टर और भूत-पिशाचों सी बड़ी बड़ी मशीनें देख ली थीं। पटेल के काम पर उसे हर हफ्ते पास के शहर जाना पड़ता था। कलकत्ता तो इस धूमिल गांव से बहुत दूर है। उसका धैर्य किनारे तोड़ रहा था। कलकत्ता भी जाना है। जिस विश्वास और आश्वासन पर वह जीवित है, उसका लेखा-जोखा लेने के लिये मशीनों के बड़े शहर में उसे जाना ही है। पटेल के बेटे की लम्बी-चौड़ी बातें उसे याद हैं। सो एक दिन वह खेत से लौट कर आया तो दौड़ गया पटेल के पास। पटेल ने निकट भविष्य में ही उसे अपने साथ कलकत्ते ले जाने की बात पक्की कर दी।

गांव में छोटासा स्कूल है। परमानन्द गुरु बहुत पुराने अध्यापक हैं। सफेदी लिये सिर और दाढ़ी के झाड़ झंखाड़ दुनिया के परिपक्व अनुभव की शहादत पेश कर रहे हैं। पटेल के बेटे के कलकत्ता चले जाने के बाद वे दुनिया के समाचार जानने के लिये दो तीन अखबार मंगाने लगे

हैं। शाम को उसी चौपाल पर लोग उन्हें घेर-घार कर बैठ जाते हैं; और वे नित्य ही पौराणिक कथाओं की तरह अखबार के सारे समाचार इन लोगों को सुना डालते हैं। दूसरे महायुद्ध की पूरी खबरें गोकुल ने गुरुजी से पढ़वाई हैं विज्ञान का चमत्कार चम-चम उसकी आंखों में आया है। गुरुजी से उसने बहुत कुछ सुना है और सुनते-सुनते शून्य में चिनगारियां उसने देखी हैं। अणु-बम की शोहरत भी उसने सुनली है। लड़ाई के पहले की पटेल के साहबजादे की बड़ी बड़ी बातें उसे कचोट रही हैं। विज्ञान का निर्माणोन्मुख विस्तार उसने बढ़ा-चढ़ाकर गोकुल को बताया है। गोकुल हैरान है। वह कलकत्ता वाले बाबू से एकबार जी खोलकर मिल लेना चाहता है ज्वालाओं में मनुष्य का ईंधन झोंककर दुनिया हमें विज्ञान का चमत्कार दिखा रही है। खेतों में ट्रेक्टर चलेंगे, खूब फसल होगी, खेतियां लहलहा उठेंगीं किन्तु गोकुल को-उस गंवार को कोई बतावे कि इन्सान का खाद देकर उस अनाज के अंबार को कौनसी दुनिया आकर चबायेगी। इन दिनों वह बहुत कम नींद ले पाता है। मन में दो-तीन जलते हुए प्रश्न निरन्तर उसे आग आग कर रहे हैं। समाधान नहीं मिल रहा है। खेत-खलिहानों में चर्र-चर्र, चूं चूं गाड़ी अनवरत चल रही है। वह डूबा हुआ विचारों की खुमारी लिये बैलों की रास थामता गांव से जंगल में निकल पड़ता है। किसी ने कभी-कभी उसकी आंखों में आंसू भी देखे हैं। उसे कोई पागल न कह दे इसलिए वह यह सफाई दे डालता है कि आंखें इतनी कम-जोर हो गई हैं कि सूर्य की रोशनी पड़ते ही आंसू छल छला

आते हैं।

वसन्त का रंग जमने लगा। मुर्दा-मनुष्य को पेड़-पौधे झुक-झुक कर हंसाने का प्रयत्न करने लगे। जीवन का उल्लास खोया-खोया मनुज से दूर-दूर होकर गांव की नदी की लहरों के साथ, किनारे से टकरा-टकरा कर जल के धूमिल देश में विस्तृत होता हुआ लौटने लगा। .... एक दिन गोकुल ने रंगीन पगड़ी बांधली और कलकत्ता जाने की तैयारी पक्की कर ली। आठ-पन्द्रह दिन के लिये उसे कलकत्ता जाना पसन्द नहीं था; किन्तु वहाँ जाना आवश्यक भी तो है। इन्सानियत और दुनिया की तस्वीर उसे परमानन्द गुरु के अखबारों से बाहर भी देखना है।

......एक दिन सुबह पटेल के साथ उसने गांव छोड़ दिया। गांव की सीमा छोड़ते हुए उसने अमराई के छाया-दार रास्ते में, उमड़ते हुए आंसुओं से गाड़ी के नालीदार कच्चे रास्ते को ध्यान से देखा। धूप-छांह से निकलकर वे लोग लोहे की पटरियों वाली काली धरती के नजदीक आ पहुँचे। कच्चा रास्ता–मीलों दूर छूट गया।

यह कलकत्ता है। रंगीन पगड़ी और कांधे पर दुपट्टा डाले गोकुल सड़कों के फुटपाथों पर चल रहा है। आंखे चौंधिया उठी हैं। उसने आंखें फाड़-फाड़ कर देखा; इन्सान उसे कहीं भी नजर नहीं आया। जिधर देखो उधर मशीन के पुर्जे हिल-डुल रहे हैं। उसके बाबू साहब भी उसे धुंधले-धुंधले नजर आ रहे थे। उसे ऐसा लगता था, मानों वह

रोटियों और लाशों के जुलूस

पटेल का लड़का एक छोटा एञ्जिन है, जो गांव से आये सारे कुटुम्बियों और गोकुल की पंक्तिबद्ध छोटी-सी ट्रेन को फ़ुट-पाथ पर खींच-खींच कर आगे ले जा र
उसके मन में अनेकों प्रश्न वौखला रहे थे। वह कोलाहल से दूर भाग कर एकान्त चाहता था। किन्तु उसे लगा मानो नर्क के कीड़ों की तरह सारा जग किलबिला रहा है।

विचारों में डूबा-डूबा वह पटेल के परिवार के साथ साथ मशीन की तरह चल रहा था। बीच बीच में वह अपने आपको सम्हाल लेता था। कभी कभी वह उद्भ्रान्त हो उठता था। उसे लगता था मानो वह जड़ हो रहा है, लोहे की मशीन बन रहा है, चक्र बन रहा है। मशीन का पुर्जा बनकर लहू का 'लुब्रीकेशन पी रहा है।

घूमते-घूमते शाम पड़ गई। शहर चमचमा उठा। सड़क को पार कर सारा परिवार सिनेमा घर की ओर मुड़ा। 'गांव की गोरी' का पोस्टर बिजलियों के बीच चमक रहा था। बाबू साहब ने गोकुल को पोस्टर पढ़कर सुनाया। उसे अजीब सा लगा। 'गांव की गोरी' इस दानव नगरी में कहां से आ पहुँची! कलेजा धक धक हुआ। अरे ये शहर की लपटें गांव की ओर बढ़ रही हैं! यह सब क्या हो रहा है! वह चिल्ला उठा "नहीं नहीं बाबू साब, घर चलो इसे क्या देखना? तुमसे बहुत सी बातें पूछना है!" सब हंस पड़े। उनकी हँसियों में जो कुछ निनादित हुआ वह था "गोकुल गांव का गँवार है।"

......गोकुल सर पकड कर बैठ गया। दुनिया घन्-से

घूम उठी। उसने चाहा कि वह इस चकाचौंध से दूर भाग जाये। किन्तु उसे कहीं भी अँधियारा नजर नहीं आया। सड़क के उस पार एक वृक्ष के नीचे उसे थोड़ा अन्धकार दिखलाई पड़ा। वह दौड़ पड़ा—दौड़ पड़ा वह मृत्यु के मुख में। उसकी विवशता पर घने अन्धकार ने उसे अपने भुजपाश में बाँध लिया। घर्र-घर्र ट्राम आ धमकी और वह पटरियों पर ढेर होगया। 'मर गया' का शोर गुल हुआ। भीड़ ने विशेष आश्चर्य प्रगट नहीं किया। ट्राम के चक्के आगे बढ़ गये। गोकुल के मन के तिलमिलाते प्रश्न, जिन्हें वह गांव से सम्हाल कर लाया था, डूब गये। गांव के कच्चे रास्ते पर दौड़ने वाली चर्र-चर्र चूं-चूं गाड़ी घरके सामने खड़ी-खड़ी अब भी गोकुल की राह देख रही है।

———————

प्रकाश नहीं; भूकम्प !

फल्लू की जिन्दगी गल रही है। जिस गली में वह ता है उसे लोग 'कन्हैया की गली' कहते है। कन्हैया मार था, जूते गांठते गांठते उसने रामायण मुखाग्र कर ली थी और मजदूरों की सहायता से गली के एक कोने में राम-मन्दिर भी बनवा दिया था। उन दिनों सुबह-शाम जब राम मन्दिर की घण्टी बज उठती, तो उच्च वर्ण के 'सम्भ्रान्त' घरों में वातावरण संगीन हो उठता। गली में एक ओर की ऊंची दीवार की खिडकियों में हरा-नीला प्रकाश झिलमिलाता रहता था। इस ऊंची दीवार के सर पर, आसमान से कुछ ही नीचे, उच्च-जाति के शुद्ध छटे हुए 'सम्भ्रान्त' घराने लहलहाया करते थे। खिड़कियों से जब चमारों के राम मन्दिर की घण्टियों की टन् टन् उस हवेली के भीतर प्रवेश करती तो लोगों के कलेजे दहल जाते। घण्टा की अंतिम डूबती हुई झंकार जब तक पूरी न डूब जाती तब तक ऊपर के गृहस्थी कानों में उंगली डालकर अविचल, स्पन्दनहीन बैठे रहते; फिर उनकी आंखों में अँगारे तैरने लग जाते जब कन्हैया चमार मंत्रोच्चारण के बाद उच्च स्वर में राम की आरती गाता। वे दिन भर के हारे-थके रईस इस छूत लगे राम नाम से ऊब उठते थे। उनकी पूजा के

क्षण विषाक्त हो जाते थे।

सो बात पुरानी है। तब कल्लू अधकचरा जवान था। अब वह पूरा जवान है। किन्तु जवानी भी कैसी कि क्षण-क्षण प्रतिक्षण वह गल रहा है।......तो मैं पहिले कन्हैया चमार, कल्लू के बाप की ज्वलन्त घटना सुना दूं।

सावन सूखा बीता जा रहा था। देशव्यापी चिन्ता उग्र हो उठी थी कि पानी न बरसा तो अकाल मुंह फाड़कर दौड़ आयेगा। घर घर धर्म की वाणी बिखरने लगी। कन्हैया ने भी पास पड़ोसियों को रामायण की चौपाइयां सिखा-पढ़ाकर रामलीला करने की व्यवस्था जमाई। गली में एक दिन फूटे कांच का 'गैस' भप भप कर उठा और गलीआलोकित हो गई। कन्हैया स्वयं राजा दशरथ बना और उसका बेटा कल्लू राम। रामलीला शुरू हुई। गलीके कण-कणमें जैसे राम बोल उठा। सड़ीगली नालियों पर चर्म का आसन बिछाये चमार स्त्रियां सुध बुध खोकर जैसे राम में समा गयीं। सचमुच सारा वायु मण्डल सिहर उठा और काली घटायें घिर आईं। बिजली कड़की और बादल गरज उठा। ठण्डी बरसाती हवा के झोकों ने टूटा फूटा गैस बुझा दिया। इस अन्धकार में चंचला दमकी और क्षण भर के अतुल प्रकाश मे राम का मुकुट कल्लू के सर पर झलक उठा। ऊपर हवेली को खिड़कियां खट-खट बज उठीं और अचानक ढेर-सा गरम-गरम उबलता तेल राजा दशरथ-कन्हैया चमार पर बरस पड़ा। चमार तिलमिला कर कराह उठा। सारा शरीर झुलस गया और आंखें जलकर

दृष्टिहीन हो गई। सब दौड़ पड़े। धुंधले लालटेन के उदास उजाले में सब ने देखा कि राम मन्दिर का संस्थापक बुरी तरह छटपटा रहा है। आसमान की ओर टकटकी लगाकर सबने क्रुद्ध भगवान से क्षमायाचना की। कुछ पुराने लोग कहने लगे, "हमने जात-पात का भुलावा देकर धर्म को अपवित्र किया, इसलिये भगवान ने क्रुद्ध होकर पानी के बदले आग बरसा दी। महा पाप हुआ, छोड़ो पवित्र राम नाम। बनिया-बामन के पवित्र धर्म को छूकर हमने धरती लट देने की साजिश की है"। कन्हैया के आसपास जमघट लग गया। उपचार के बदले लोग उसे धमकाने लगे वह तड़प रहा था और कल्लू राम-मूर्त्ति के चरणों में माथा टेककर भगवान् से दया की याचना कर रहा था। बादल एक बार फिर गड़गड़ा उठा। साथ ही गरम-गरम छींटे फिर बरसे। सब भागे। भागते-भागते कुछ लोगों ने ऊपर देखा कि हवेली की एक उजली खिड़की में एक गौरवर्ण चन्द्रमुखी खिड़की की कील में अटके हुये चद्रहार को जल्दी-जल्दी निकालने का प्रयास कर रही है। उसके दूसरे हाथ में जो कटोरा है उसमें से तेल की बूंदें अब भ टप-टपा रही हैं। सब चिल्ला पड़े-'अरे यह हवेली का पाप है,'। कल्लू की आँखे दमक उठीं और वह क्रोध में उबल पड़ा। कन्हैया बेसुध सा हांफ रहा था। उसने धीरे से कल्लू का हाथ पकड़ा और अस्फुट स्वरों में रामायण की एक पंक्ति गाने लगा। 'प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि'-गाते-गाते कन्हैया ने आँखों से दो बूंद आँसू ढुलका दिये-आसमान में चंचला चमचमाती एक ओर से दूसरी ओर निकल

गई और मेह बरसने लगा। गली में प्रगाढ़ अन्धकार छागया और कल्लू रोते-रोते अकेला राम की आरती गाने लगा। ऊपर हवेली के ध्वनि प्रसारक यन्त्रों से आवाज आ रही थी कि देश के धर्मोपतियों ने सामुहिक रूप से अछूतोद्धार के लिये एक करोड़ का दान दिया है। कल्लू ने सुना और चिर-निद्रा में लीन अपने बाप की लाश का मुंह फिर एक बार कफन हटाकर उसने देख लिया।

सो इसी 'कन्हैया की गली' में कल्लू का जीवन गल रहा है। उसे कुछ सुहाता नहीं। इस गली में अब सब तरह के मजदूर आकर बस गये हैं।

कल्लू किसी से भी विशेष प्रेम नहीं करता। उसे इस गली का अन्धकार अच्छा लगता है। पहिले की तरह आज भी यह गली ऊंची-ऊंची इमारतों का पिछवाड़ा है वहां हवेलियों में पायलें छुम-छुम करती हैं और देव-पूजा के मधुर स्वर उच्चारित किये जाते हैं। किन्तु कल्लू उन सब ध्वनियों को राम-मन्दिर की घण्टियों की गूंज में विलीन कर देता है।

हमारा राज, कहते हैं अब पूरी तरह हमारा राज हो चुका है। नई-नई योजनाएँ दन-दनाती कागजों पर उतर रही हैं। शहरों की उत्तुंग इमारतें पहिले ही चमचमा उठी हैं; और मजदूर बस्तियों के धुंधले दीये बड़ी बड़ी आशायें लेकर झिलमिला रहे हैं। 'कन्हैया की गली' में आज भी घोर अन्धकार है। जिन कोठरियों में जिन्दगियां चल रही

हैं, वे निरन्तर नियमित गल रही हैं, यहां नर्क ही नर्क है। यहां के जीवन में सबसे बड़ा यही सन्तोष है कि किसी भी घरसे वैभवशाली सुखी दुनिया की बू नहीं आ रही है। यही सबसे बड़ा सुख है कि यहाँ का जर्रा-जर्रा झुलस रहा है। नैराश्य पूर्ण जीवन में किन्चितमात्र असमानता नहीं है। यहां अभावों की कमी-बेशी भी किसी नापतौल की पकड़ में नहीं आ सकती। कल्लू इस जीवन को स्वर्गिक सुख से भी अधिक श्रेष्ठ मानता, यदि उसे आज एक अप्रत्याशित चिन्ता न आ घेरती। उसकी चिन्ता यह है कि जिस जर्जर घर में वह रहता है उस घर का मालिक कोठरी की एक दीवाल तोड़कर अन्दर प्रकाश पहुँचाने की व्यवस्था करना चाहता है। कल्लू को प्रकाश से चिढ़ है, खीज है। उसने बचपन से आज तक अन्धकार को ही प्यार किया है। प्रकाश के अभाव के सुख को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये कल्लू मकान मालिक से निरन्तर अनुनय विनय कर रहा है। अँधेरी कोठरी में दुःख, चिन्ता, बेवसी के स्पष्ट प्रतीक झूल रहे हैं। प्रकाश के अभाव में उन्हें वह देख नहीं पाता है। उसके दारिद्र्य का उभार अन्धकार में डूबा रह जाता है। उजालदान बन जायगा, तो प्रकाश भीतर धंस जायगा और चुन-चुनकर झुलसे हुये जीवन के प्रतीक दुनियाको दिखा देगा। अर्द्ध नग्न गंगा, उसकी पत्नी कई दिनों से बाहर नहीं निकली है। बुढ़िया मां भी एक वर्ष से मृत्यु मृत्यु चीख रही है और चीथड़ों पर तड़प रही है। उसे नासूर की भयंकर बीमारी है। मृत्यु भी पास आना नहीं चाहती। उसके सर पर छत्र की तरह सैकड़ों तारों की

बुनावट में कई मकड़ी के जाले तने हुए हैं। कल्लू का गुणगान करते हुए कई खटमल-मच्छर, कीड़े-मकोड़े, स्वतंत्र प्रजातंत्र का उपभोग कर रहे हैं। कल्लू इन पर प्रकाश नहीं च हता। किन्तु मकान-मालिक भी लाचार है उसे नगरपालिका की अनिवार्य आज्ञा का पालन करनाही होगा।

सो 'कन्हैया की गली' में प्रकाश पहुँचाने का काम जारी हो गया है। आदि से अन्त तक कोठरियों पर खिड़कियां लग रहीं हैं। दरोगाजी रोज देखने आते हैं, इंस्पेक्टर चक्कर काट जाते हैं और नगर-पालिका के 'चेअरमेन्' नाक-मुंह को रुमाल से ढांककर योजना को कार्यान्वित होते देखजाते हैं। कल्लू सुध-बुध खोकर सब देख रहा है भीतर का जीवन निरंतर गल रहा है; वह कोने में बैठकर सिसकता है; उसे ऐसा प्रकाश नहीं चाहिये। वस्त्रहीन गंगा; जर्जरित मां; गन्दी-मैली-कुचैली दीवारें; ये सब अन्धकार में उसे सन्तोष दे रहे हैं। उसे बाहर का प्रकाश नहीं चाहिये। उसे चाहिये भूकम्प ! भूडोल उठे कि दोनों ओर की उत्तुंग दीवारें लड़खड़ाकर धराशायी हों जाय और 'कन्हैया की गली' का रहस्य मिट्टी के बड़े पहाड़ के नीचे, अन्तर-व्यथा की तरह तड़प कर किसी दिन ज्वाला-मुखी की तरह ज्वालायें उगल दे........इन दिनों कल्लू प्रभु से निरन्तर यही प्रार्थना कर रहा है।

रहस्य की रात

टीन की चद्दरों पर मूसलाधार बूंदें बड़ा शोर मचा रही थीं। प्रीतम बाबू को ऐसा लग रहा था, मानों सपने झर रहे हों और रोके न रुक रहे हों सर पर छाता ताने वे चले जा रहे थे। रात आधी बीत चुकी थी। शहर के कई मोड़ों व चौराहों को पार करते हुए, वे उस अन्तिम चौराहे पर आये, जहाँ से अलबेले मोहल्लों की सीमा शुरू हो जाती है। प्रथम फूलवालों की दूकानें दोनों कतारों में दूर तक चली गई हैं; उन्हीं को छूते हुए इत्र व तेल वालों का महकता मुहल्ला एक घुमाव तक चला गया है और उस घुमाव से लगता हुआ रुपजीविनियों और नर्तकियों का लीलामय संसार मच्छी बाजार के चौराहे तक फैलता चला आया है। इस चौराहे से उस चौराहे तक यह पूरी व्यवस्था इतनी रात बीत जाने पर भी जगमगा रही थी। यकायक बरसात की झड़ी कम हो गई और सावन की झीनी फुहारें एक मधुर छन्द की तरह बरसने लगीं। प्रीतम बाबू छाता फैलाए चले जा रहे थे। जब वे एक सकरी गली के पास आकर खड़े हुए तो एक ढेर सी हंसी उनके कानों पर आकर टकराई। गली के एक कोने पर छोटी सी इस्लामिया होटल अब भी चल रही थी और दूसरे कोने

पर एक जली आंख वाले लालाजी अपनी पान की दूकान पर कुछ सरंगियों के साथ हंसी दिल्लगी में झूमते हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। प्रीतम बाबू छाते से अपने आपको छुपाकर सहमे से खड़े रह गए। लालाजी की आंख अचानक प्रीतम बाबू पर पड़ गयी, और वे अपने मुंह का धुआं उगलकर सब साथियों के साथ खिलखिला पड़े। घनी अंधियारी गली थी। केवल भीतर दूसरे छोर पर एक धुंधला लेम्प टिमटिमा रहा था। प्रीतम बाबू ने एक ही क्षण में साहस बटोर लिया और गली में मुड़ गए। गली के दोनों किनारों पर, ऊंची उठी हुई दीवारों की खिड़कियों से प्रकाश फूट फूट कर बाहर निकल रहा था, और उन दीवारों से सटे हुए टीन के सड़े नल कच्ची नालियों में झर झरा रहे थे। किसी खिड़की से तबले की थाप के साथ, कई आदमियों की एक साथ हंसने की आवाज आई। अभ्यस्त न होने के कारण प्रीतमबाबू डर गए। सामने गली का रास्ता अवरुद्ध करने वाला अन्तिम घर हीरा का ही था। प्रीतमबाबू ने जल्दी जल्दी कदम उठाये और हीरा के पुराने वेलदार नक्काशीवाले दरवाजे पर आकर ठिठक गये।

निश्चित किये हुए इशारों के अनुसार प्रीतम बाबू ने दरवाजे को तीन बार खटखटाया। जीने पर किसी के छुम छुम उतरने की आवाज हुई और दरवाजा धीरे से खुल गया। चेहरे पर भटकती हुई दो चार अवहेलित अलकों को हटा कर हीरा ने मुस्कराते हुए शाही ढंग से अभिवादन किया। उसी समय पास के मकान से दो शराबी लड़खड़ाते हुए निकले। वे किसी नूरी को गालियां देते हुए जल्दी

जल्दी गली पार करने लगे। ऐसी गलियों में अभ्यस्त पांवों को, रास्ता पार करने में कोई कठिनाई नहीं होती। मदहोश मतिभ्रष्ट मानव के पांव भी अभ्यस्त होने के कारण अपनी दिशा और गति बराबर याद रखते हैं। प्रीतम बाबू आश्चर्य से इस अंधेरी दुनियां के उन पियक्कड़ों को देखते रहे। पास ही म्युनिसिपेलिटी का एक पुराना बूढ़ा लैम्प मंद मंद जल रहा था। उसके क्षीण प्रकाश में हीरा ने प्रीतम बाबू के चेहरे पर विस्मय की उभरी रेखायें देखीं। उसने हंसते हुए उन मदहोश पियक्कड़ों का परिचय दिया। वह घुंघरू भरा पांव देहली पर जमाकर बोली, "ये दोनों उस कोने वाली होटल के मालिक हैं। बेचारी नूरी ने कई दफा इनके झूठे बिल चुकाये हैं। ये खूब पीकर गाना सुनने आते हैं और महफिल उठ जाने पर अपने लेन देन का फरजी हिसाब पेश कर देते हैं। बेचारी नूरी हाथ जोड़ जोड़ कर हार जाती है, लेकिन ये हैं कि गालियां झाड़ झाड़ कर गरीब की मरम्मत कर डालते हैं। आखिर कुछ ले लिवाकर, गालियां सुनाते-सुनाते गली पार कर जाते हैं। और आपने देखा होगा, दूसरे कोने पर वह मुआ पान वाला लाला कैसा संडिया गया है। इस अंधेरी गली को लूट-लूट कर, वह उजला-सुफेदा बन बैठा है और स्वच्छंद परिन्दे की तरह चहचहाता रहता है।"

इतने में ही पास वाले दूसरे जीने से किसी के लुढ़कने की धम-धम आवाज आई। प्रीतम बाबू ने चौंक कर देखा कि एक १४-१५ वर्ष का लड़का बुरी तरह लुढ़ककर अधखुले दरवाजे से आकर टकरा गया है। दूसरे ही क्षण

छुम-छुम करती हुई उसकी मालकिन नीचे उतरी और घुंघरु बंधे पांव की ठोकर देते हुए बोली "कम्बख्त जब देखो तब ऊंघता ही रहता है। देखो न हीरा! बाबू लोग आवाज दे देकर लौट जाते हैं और ये मुवा शाम पड़ते ही लटक जाता है। हीरा के चेहरे पर दुःख, शोक अथवा करुणा की रेखायें नहीं थीं, किन्तु प्रीतम बाबू चित्र लिखे से खड़े-खड़े देखते रहे। दो क्षण बाद तीसरे दरवाजे पर एक अजीब सा कुहराम मच गया। एक हट्टाकट्टा छल्लेदार घुंघराले बालों वाला, छैला जिसके एक कंधे पर सारंगी लटक रही थी और हाथ में तेज छुरा चम-चमा रहा था, बड़ी बुरी तरह दरवाजा पीटने लगा और किसी अनवरी को लक्ष्य कर मशीनगन की तरह गालियां बरसाने लगा। प्रीतम बाबू अप्रतिभ हो निर्जीव से खड़े रह गये।

ऐसे काण्ड उन्होंने कभी नहीं देखे थे। वकालत करने वाले प्रीतम बाबू ने न्यायालय में खड़े होकर ऐसे काण्डों पर—तर्क-वितर्क के साथ अनेक-अनेक चर्चाएं की हैं; किन्तु घटनाओं के सम्पर्क में वे कभी नहीं आए थे। उन्होंने अधीरता से हीरा को झकझोर कर पूछा—'हीरा इस रूप यौवन को लेकर तुम यहां क्यों रह रही हो ?'

हीरा मुस्कराती रही और प्रीतम बाबू की बात को अनसुनी कर अनवरी के छुरेबाज मेहमान को देखती रही, जैसे उसने कुछ सुना ही न हो! अलक्षित बिन्दु की तरह वह निश्चेष्ट, निरपेक्ष खड़ी रही। कोने में खड़ा हुआ म्युनिसिपैलिटी का बूढ़ा लैम्प अब भी जल रहा था और

रोटियों और लाशों के जुलूस

उसका क्षीण प्रकाश हीरा के चेहरे पर फैल रहा था। प्रीतम बाबू ने ठुड्डी पकड़ कर हीरा को झकझोरा और अधीर होकर बोले—'हीरा इस गली में यह रात भर क्या होता रहता है ?'

हीरा के ओठों पर एक मुस्कान थिरकने लगी। प्रीतम बाबू का प्रश्न हीरा के मौन में प्रविष्ट करता हुआ सा न जाने किस अनन्त के अन्तराल में जाकर डूब गया। वह प्रीतम का बन्द छाता थामे, दरवाजे का सहारा लेकर स्तब्ध खड़ी रही। अनवरी के दरवाजे पर भौंकता हुआ छुरेबाज सरंगिया अब इन लोगों के पास आ धमका और प्रीतम बाबू को लक्ष्य कर बोला—'बाबू इस गली में हीरा, पुतली, नूरी, अंगूरी सभी रहती हैं; लेकिन साहब ! अनवरी जैसी बदमाश औरत दूसरी मैंने नहीं देखी। शकल चुड़ैलों की और मिजाज परियों का है। बाहर निकली नहीं; निकल आती तो आपकी कसम यह छुरा अपनी प्यास बुझा ही लेता।'

प्रीतम बाबू ठुक कर खड़े रह गए। सरंगिये के मुँह से शराब की भभक जोरों से उड़ रही थी। हीरा ने उत्तेजित छुरेबाज को मोहब्बत से थपथपाया और वह लड़खड़ाता गालियां बरसाता हुआ गली पार कर गया। प्रीतम बाबू नीरंध्र पत्थर की तरह निस्तेज अचल खड़े रहे। क्षण बीते और वे अपने-आप में लौट कर बोले 'हीरा इस नर्क में तुम कैसे जी रही हो ?'

[नब्भे]

हीरा की मुख-मुद्रा गम्भीर हो उठी। उसने पलट कर प्रीतम बाबू को देखा। उसके कानों में झूलते हुए झूमरों की नीलिमा जगमगा उठी। नीली मणियों से जो प्रकाश निकला वह दामिनी सा दमक उठा। और ऐसा लगा मानों इस अंधियारी गली से दूर, वैभव शाली संसार को चुनौती देने के लिए एक प्रकाश किरण उड़ चली हो। वह वस्त्र के अवहेलित आँचल को खींच कर निर्भीक स्वरों में बोली 'तो बतलाइये न हम कहाँ रहें? किसकी साया में जियें और मरें? जहर ही सही, किंतु क्या वह भी आप लोगों ने इतना बाकी रक्खा है, जिसे पी कर हम हमेशा के लिये इन किस्सों को बुझा डालें !! बाबू मन से जीने का मोह नहीं छूटता, इसलिए किसी तरह जिंदगी को हम ढकेल ढकेल कर आगे बढ़ा रही हैं। खुदा ने स्वर और संगीत का एक सहारा हमें दे दिया है। जब कभी दिल में तूफान उमड़ने हैं, तो बेचारी सारंगी अपने दर्द भरे राग सुना कर साहस बंधा देती है। एक तरफ आ पड़ी हैं . किसी से कोई शिकायत नहीं हैं। जिन्दगी का कारवाँ चला जा रहा है।"

पानी की फुहारें थमी हुई थीं। किन्तु घने सघन बादलों में बिजलियाँ कौंध रही थीं। प्रीतम जैसे पराजित से बोले 'हीरा सब रास्ते खुले हुए हैं, किसने तुम्हारा मार्ग रोका है? अंधियारे का मोह छोड़ कर रोशनी में क्यों नहीं चली आती हो हीरा?'

हीरा खिलखिला पड़ी और वीरांगना की तलवार की

तरह चमक कर बोली 'बाबू आपकी जिन्दगी भोग और सुख में बीत रही है; आपने हमारे बारे में कुछ सोचा समझा नहीं है। कहिये हम कहा जांय? कहां रहें? ऐसी कोई खुली जगह बाकी नहीं है, जहां आपके जहरीले कीड़े न रेंग रहें हों! अगर आप लोगों का कानून खुदा पर भी हावी हो गया होता तो न जाने हमारी क्या हालत हो गई होती? अपने आपको समेटते समेटते हम इन गलियों में आ बैठी हैं, खुदा की रौशनी साथ है। जिन्दगी को सहारा देने वाले इस रोजगार में पाप है या पुण्य, इसे हमने कभी सोचा नहीं है। हां, इतना मैं कह सकती हूँ कि समाज के पापों को इस तंग और अंधियारी गली में हम लोगों ने ऐसा दबोच रखा है कि रोशनीदार दुनियां में आप लोगों के कानून खूब पाक, साफ और उजले नजर आ रहे हैं। इस गन्दगी में रहकर भी हम उस क्रूर-समाज की हिफाजत कर रहीं हैं।'

प्रीतम बाबू धुंधले लेम्प के प्रकाश में अपलक हीरा के चेहरे के उतार चढ़ाव देखते रहे। बोल न फूट सका।

हीरा ने छाता उठाया और बोली—'आइये बाबू! ऊपर चलें; अधिक देर यहां रहना ठीक नहीं है।'

गगन में एक सजल बदली आ धमकी और बरसने लगी। तेल चुक जाने से बूढ़ा लेम्प भी क्षीण होते-होते बुझ गया; और वे दोनों खट-खट जीना चढ़ कर ऊपर चले गए।

सुसज्जित कमरे में महफिल जमी हुई थी। हीरा ने प्रीतम बाबू को अपने शृंगार-गृह के उस जंगले के पास ला कर बैठा दिया, जहां से उस ओर नीचे नदी की लहरों की छुपाक-छुपाक आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। हीरा का यह जल-निवास पीछे की ओर बिलकुल नदी के तट पर ही खड़ा हुआ था। प्रीतम बाबू चुपचाप चचंला की चमक-दमक में छलकती लहरों को देखने में व्यस्त हो गए। हीरा महफिल में चली गई। उसे जाना ही पड़ा। वहाँ मेहमान प्रायः—अधीर हो चले थे और हीरा की अनुपस्थिति का रहस्य जानने के लिये उत्सुक हो उठे थे।

शृंगार-गृह से सटा हुआ एक छोटा-सा कमरा औरथा, जिसके दोनों कपाट बिलकुल खुले हुए थे और एक धुंधला रजनी दीप शयन-वेला का अभिनन्दन करता हुआ सा जल रहा था। सरितोन्मुखी दूसरे जंगले के कक्ष में, एक नव-यौवना भरी-भरी आँखें ले कर पाँव की गौर-वर्ण पढ़ी पर फैले हुए घुंघरुओं को छू छू कर कुछ सोच रही थी। महफिल वाले कमरे से हीरा के नाचने-गाने की ध्वनि आने लगी और सारंगी के दर्द भरे स्वर तारों से बिखर-बिखर पिया मिलन की उत्सुक बाला की तरह थिरकने लगे। प्रीतम बाबू अपने आप में डूब कर न जाने कहां बहे जा रहे थे। गजल पूरी हुई और हीरा थक कर चूर हो गई। मजलिस में हसियों के फव्वारे छूटने लगे। नवाबों के जमाने का पान का डिब्बा जब खुला और हीरा ने मँहदी भरे हाथों की लम्बी-लम्बी उंगलियों में कत्थे की शलाखा पकड़ी, तो महफिल के प्रमुख ने हीरा का हाथ थाम लिया। वह गिड़-

गिड़ाता-सा बोला—'हीरा जिस कुसुम-कली को तुम वर्षों से तालीम दे रही हो आज उसकी एकाध चीज होनी ही चाहिए, कैसा अच्छा समाँ बंधा हुआ है!'

हीरा जैसे चौंक उठी। उस ओर छोटे कमरे में विचारों में डूब कर बैठी हुई रूपा पिछले पांच वर्षों से हीरा के घर रह रही है। उसने अपने रहस्य कहाँ खोले हैं! हीरा अभी तक भी उससे अ-परिचित है। जब कोई बात पूछी जाती है तो वह विनय पूर्वक हीरा के कदमों में झुक जाती है। हीरा थपकियां दे-दे कर और मातृत्व के चुम्बन बिखेर-बिखेर कर निरन्तर उससे उसकी जीवन-कथा पूछती चली आ रही है; किंतु रूप-मयी रूपा चुप है अ-बोली है; वैसे नृत्य-गान सीखने में उसने अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया था।

हीरा नर्तकी है, महफिल की दया और कृपा पर ही—उसकी जिंदगी अवलम्बित है। महफिलें लगातार रूपा की मांग करती चली आ रही थी; किंतु उसने स्वार्थ व भावुकता को रोक कर दृढ़ता-पूर्वक हर-बार इन्कार-इन्कार के राग अलाप दिये। आज भी उसने ओंठों की पुरानी-लाली पर पान जमाते हुए 'नहीं-नहीं' का सर हिला दिया। मजलिस में काना फूंसी चल पड़ी। कोने में ऊँघता हुआ एक छैला उछल पड़ा और बोला—'यह हमारी तौहीन है!' सब लोग चिल्ला पड़े—'बेशक! बेशक!'

हीरा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सी नक्काशीदार पान के डिब्बे को खोल, मजलिस के लिये पान लगाने में व्यस्त हो गई। शोर-गुल कानाफूंसी और हंसी-क्रोध के बीच यकायक

छुम्म से रूपा आ कर खड़ी हो गई। तारों से जड़ी काली झीनी साड़ी में अंग अंग का यौवन निखर रहा था। हीरा अचंभित हो विस्फारित आँखों से देखती ही रह गई। कई क्षणों तक मजलिस चित्र-लिखी-सी बैठी रही और रूपा ओठों पर मुस्कान थिरका कर हीरा का आँचल थामे रंग-बिरंगे फानूसों की—जगमगाहट देखती रही। बाहर पानी बरस रहा था और चंचला क्षण-क्षण में हंस रही थी। देखते ही देखते हीरा की आंखों में जल भर आया और वह वात्सल्य की वाणी में फूटपड़ी—'बिटिया घुंघरू छोड़ दो।'

रूपा ने हीरा का मुंह चूम लिया और हठ-पूर्वक बोली —'जीजी! मैं नाचूंगी, बंधे घुंघरु नहीं छूटेंगे। वर्षों से आने वालों को नाराज कर दोगी तो फिर कहाँ रहोगी? सारे संसार से ठोकरें खा कर तुम इस गली में आ बसी हो। सोचो जीजी गफलत में ऐसा ठिकाना भी खो डालोगी?'

हीरा निस्तब्ध थी और आंखों से बरसात बरस रही थी। रूपा ने हंसते हुए आदेश दिया, "मुनीर चाचा! जरा खींच दो सारंगी के तारों को" भाव-गीत चला और दर्द भरे खिचे तार साथ देने लगे। हलके नृत्य में घुंघरुओं की थिरकन एक भेद भरे जीवन की आख्यायिका लिखने लगी। गीत के भाव इतने अधिक स्पष्ट हो चले थे कि महफिल का हरएक छैला, सुन्दरी के भौतिक रूप को भूलकर, आत्मा के स्वरों और उनमें छुपी हुई गहरी वेदना पर निछावर हो जाने की बात सोचने लगा। उस वेला वासना को आसरा नहीं मिल पा रहा था। हीरा अपलक नेत्रों से रूपा को

देख रही थी। नर्तकी देख रही थी कि भावों से ओत-प्रोत संगीत का क्षणिक सुख जन्म जन्मान्तरों के पाप भी काट सकता है। सारी मजलिस स्तम्भित थी और गीत में, उजड़ी हुई जिन्दगी के स्वर अतीत की एक कहानी धीमे बोलों में बोल रहे थे। महफिल की दुनियां बदलती सी नजर आने लगी। व्यक्ति व्यक्ति आत्मानन्द में डूब कर यह सोचने लगा कि वह वैश्यालय में नहीं, किसी देवालय में बैठा है। गीत पूरा हुआ और सारंगी एक धीमी लय छोड़ती हुई चुप हो गई। रूपा थककर ऐसी चूर हो गई कि हँसते हँसते हीरा की गोद में जा गिरी।

मजलिस टूट गई और सब भक्त धीरे धीरे उस अंधियार गली के पार हो गये। उस ओर दरवाजे की देहली पर प्रीतम बाबू अभी तक कीलित से खड़े थे। हीरा ने ज्योंही पलट कर देखा; उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। प्रीतम बाबू अपने से दूर-दूर चले जा रहे थे। जैसे तिनका बहा जा रहा है और उसे कहीं अटकने का स्थान नहीं मिल रहा हो। हीरा ने प्यार भरे शब्दों में पुकारा' "प्रीतम! क्या देख रहे हैं! कब से खड़े हैं आप? आइये न! किसे बांध रहे है इन विचारों मे, क्या सोच रहे हैं?" सपना टूट गया और प्रीतम बाबू धीरे-धीरे हीरा के नजदीक आ बैठे। रूपा उठ बैठी और पांवों में बंधे घुंघरुओं की कठिन ग्रन्थियों को सुलझाने में व्यस्त हो गई। हीरा ने मुस्कराते हुये कहा, 'प्रीतम बाबू' यह है रूपा! पिछले पाँच वर्षों से मेरे साथ है। मैं स्वयं इससे अपरिचित हूँ। एक

दिन ऐसी बरसाती रात में यह अचानक मेरे घर आ गई थी। मन और शरीर दोनों डूबे हुए थे। .... मैंने इससे बार-बार पूछा है, किन्तु उत्तर में सिर्फ यह दो आँसू दुलका देती है। मैं बाज़ार की नारी हूँ, किन्तु मैंने कभी यह नहीं चाहा कि रूपा को विलास के बाजार में घसीट लाऊं। अभी तक रोके रही, किन्तु आज . ... मैं लाज से गड़ी जा रही हूँ ... रोकते-रोकते भी रूपा विद्रोह कर बैठी और मेरी मर्ज़ी को ठेलकर नाच गा उठी।" रूपा घुंघरुओं की ग्रन्थियां ढीली करने में असफल रही तो खिड़की से बाहर कौंधती हुई बिजलियां देखने लगी। प्रीतम बाबू की आंखे अचानक ही छलछला आईं। वे तारों से जड़ी साड़ी का आंचल पकड़ कर रूपा से गिड़-गिड़ा कर बोले, 'बेटी अपरिचिता बन कर कब तक जिन्दगी चलाओगी ? आज कह दो सब; मैं सुनूँगा तुम्हारी जीवन-कथा।" रूपा ने प्रीतम बाबू की जल से भरी आँखे देखी और घुंघरुओं को छमकाती शृंगार-गृह की ओर दौड़ गई। कुछ क्षण बाद पीतल का 'कास्केड' लेकर लौट आई। प्राचीन राजाओं के फरमान की तरह कागज का एक बन्डल उसने निकाला और प्रीतम बाबू को दे दिया। उसके जीवन की लम्बी कहानी प्रीतम पढ़ने लगे। वे डूब गये उसमें। हीरा पान लगाने में व्यस्त हो गई और रूपा शृंगार-गृह में लौट गई। उस आख्यायिका का अन्तिम भाग यह था—

"मैं जिस पियक्कड़ व जुआरी पति की बात लिख रही हूँ, वे किसी दूसरे शहर के रहने वाले थे। पिता की अपार

सम्पदा का मोह त्याग कर सुरा-सुन्दरी के लोभ में एक दिन घर से बाहर निकल भागे थे। माता-पिता समझाते-बिलखते ही रह गये। उस बेटे को खूब पीना और एकाकी रहना ही अधिक पसन्द था। वे बनारस आकर मेरे घर के पास ही ठहर गये। एक दिन मेरे गरीब बाप को उन्होंने ठग लिया और मेरी शादी उनसे हो गई। महिने भर साथ रहा। किन्तु एक दिन तलछट पीकर वे गंगा की लहरों की ओर दौड़ गये—फिर लौट कर नहीं आये। कहते हैं उनके बाप का नाम प्रीतम बाबू है। वे इलाहाबाद में नामी वकील हैं।" पीतम बाबू के हाथों से "कथा-पत्र" छूट पड़ा। वे सुध-बुध खोकर शृंगार गृह की ओर दौड़ पड़े। पागल और विक्षिप्त की तरह चिल्ला उठे "बहूरानी! बहू-रानी! कहां हो! रूपा! मुझ पर कैसा पहाड़ गिरा रही हो? मैं दब रहा हूँ, मैं बुझ रहा हूँ!!" हीरा की आंखों के सामने जैसे समस्त भू मण्डल नाच उठा वह समझ और नासमझ के बीच में टकराती उद्भ्रान्त सी दौड़ पड़ी। रूपा भी सर पर आँचल खींच कर शृंगार-गृह के सरिन्तोमुखी जंगले के पास छल-छलाती आंखे लिये अप्रतिभ खड़ी रही। लड़खड़ाते प्रीतम बाबू जब उसके नजदीक आये तो रूपा अपना मस्तक उनके चरणों में रख कर मूर्छित सी हो गई। जंगले से, नदी के किनारे उफनाती-टकराती लहरों की छपाक-छपाक ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। इस 'रहस्य की रात' में, सजल घन सघन होकर बरसने लगे।

———

नीलिमा

जीवन क्षीण श्वासों की कड़ियों पर एक एक मंजिल पार करता किसी तरह प्रभात से संध्या तक आ पहुँचा। किन्तु जब सांझ भी डूबने को हुई तो नीलिमा छत पर चढ़ कर अपने सुहाग की अन्तिम अरुणाई को दूर-दूर क्षितिज के किनारों पर ढूँढने लगी। वह अकेली-बेबस खड़ी थी। वह निष्पंद और नीरव होकर देख रही थी कि अंधेरा चारों ओर बह जाने के लिये किनारे तोड़ रहा है। ...पति के बच जाने की सारी आशाएं धुंधली पड़ गई थीं। वह उदास मुख मुद्रा लेकर नीचे आई तो निराशा भरी विकृत मुस्कान में कस्बे के वृद्ध डाक्टर श्याम स्वरूप ने कह दिया कि अब केवल दो मार्ग शेष रह गये हैं- किसी साधन सम्पन्न बड़े डाक्टर की व्यवस्था की जाय या केवल प्रभू के आसरे यह जीवन नैया छोड़ दी जाय। शैया के निकट बैठी हुई जीवन की बूढ़ी मां के अन्तरतम का प्राण दीप झप झपा उठा। उसकी धंसी हुई आंखों की अविरल अश्रुधाराओं के प्रवाह में मां का दुलार एवं पत्नी का सुहाग शनैः शनैः बह चला। और भविष्य की सुनहरी आशाओं व ज़िंदगी को निर्द्वन्द बना डालने की अलौकिक कल्पनाओं के उत्तुंग

महल भी उस विसर्जन धारा में फुस फुसा कर धसने और बहने लगे। नीलिमा वृद्ध डाक्टर के समक्ष स्थिर दृष्टि से शून्य में कुछ देर देखती रही। जब उसने अपने आप में लौटकर, दीवालगिरी जलाने के लिये दोनों हाथ ऊपर उठाये तो सारी चूड़ियां फिसल कर एक साथ खनखना उठीं। मानों हजारों लाखों सुहागिनियों की लड़खड़ाती जिन्दगियां अपनी जलती उबलती समस्याओं का 'कोरस' गा उठीं।......चिमनी की जोत उभक उठी और कमरे में धुंधला पीला उजेला फैल गया। नीलिमा ने आर्त स्वर में पूछा 'चाचाजी क्या यह दीपक बुझ ही जायगा' डाक्टर के ओंठ कुछ कहने के लिये हिले। किन्तु वे कुछ उत्तर दें इसके, पहले ही नीलिमा आंचल में मुंह छुपा कर जोर से रो पड़ी। बूढ़ी मां भी कराहते जीवन का ललाट चूमकर चीख उठी। रोने का प्रवाह रुका तो मां ने अपने दर्द को कम्पित ओठों पर तौलते हुए डाक्टर से एक और प्रयत्न करने की प्रार्थना की। साधन विहीन डाक्टर श्याम मौन रहे। केवल एक बार उन्होंने आंखे उठाईं और नीचे झुकालीं इसका स्पष्ट अर्थ यही था कि मरने वाले को शान्ति पूर्वक मरने दो। और कोई भी मार्ग उनके पास नहीं है।......... केवल प्रभु का स्मरण करो। शायद आसमान विदीर्ण हो जाय और ऊपर से अपार धन राशि का झरना फूट कर तुम्हारे आंचल में आ गिरे। मां डाक्टर के इस मौन उत्तर से कांप उठी। उसे लगा मानों जीवन की मून्दी पलकों पर मौत की छाया घूम घूम कर नाचने लगी हो... .....दो एक क्षण बाद डाक्टर को

जैसे कुछ याद आया, और उन्होंने आशा भरे स्वर में कहा, 'बिटिया ! तुम्हारे पिता तो बड़े शहर में रहते हैं न ?...... तार क्यों नहीं कर देती ?......... मैं सोचता हूँ वे शीघ्र किसी डाक्टर को लेकर चले आयेंगे।' नीलिमा ने उत्तर नहीं दिया। वृद्धा ने कहा, 'डाक्टर साहब वे तो बहुत बड़े लखपति आदमी हैं..... वे यहां क्यों आने लगे !...... आप नहीं जानते वे अपनी निर्धन नीली से बहुत नाराज हैं। .... परम्परा तोड़कर नीलू ने उनकी इच्छा के विरुद्ध जीवन को चुना था न। और जीवन भी इसीलिये उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता'। डाक्टर श्याम भौंचक्के से देखते रहे। उन्हें समझ में नहीं आया कि बेटी के लिये बाप इतना निर्मम कैसे हो सकता है। उन्होंने अधीर हो कहा, 'यह तुम लोगों की थोथी कल्पना है। लक्ष्मीपति कम से कम अपने रक्त के प्रति इतना कठोर नहीं हो सकता। हां आत्माभिमान की कोई सीमा बांध रही हो तो बात अलग है। लेकिन अभी छोड़ो सब; प्रश्न जीवन मरण का हैं, नीलिमा ने एक रुपये का नोट निकाला और डाक्टर के सामने मेज पर रख दिया। वह साहस बटोर कर बोली, 'कष्ट तो आप को ही करना होगा। यह है एक नोट। यदि इतने में तार हो सकता हो कर दीजिये ...नहीं तो रहने दीजिये'। नोट हवा के हल्के झोंके से मेज पर थिरकने लगा। डाक्टर कुछ देर अपलक उस नोट को देखते रहे। शायद वे सोचते रहे कि इस नोट में गूंथे हुये सोलह आने बुझते हुवे जीवन में नव चेतना का एक क्षण भी तो अनुप्राणित नहीं कर सकते !

और शायद यह भी सोचते रहे कि इस पुर्जे पर अंकित सम्राट का चित्र, शोषण व खोखली अर्थ व्यवस्था का ऐसा प्रतीक है, जिसके नीचे चरमरा कर लाखों जिन्दगियां असमय ही टूटती जा रही हैं। डाक्टर ने नोट को छुआ नहीं। उन्होंने नीलिमा से तार का पता पूछा और निःश्वास छोड़ कर बाहर चले गये।

जीवन उधर अन्तिम श्वासें ले रहा था और इधर मेज पर वह एक रुपये का नोट हवा में उसी तरह स्थान बदल बदल कर थिरक रहा था। वृद्धा को आराम करने का अवकाश देकर नीलिमा स्वयं जीवन के पास आ बैठी। इस समय रात का आठ बजा होगा। कमरे की नीरवता बीच बीच में कभी२जीवन की आह और कराह में टूट जाती थी। कभी कभी सड़कोन्मुखी खिड़की से बस्ती के राग-रंग का कोलाहल भी सुनाई पड़ जाता था। नीलिमा चिमनी की टिम टिमाती लौ में भविष्य के चित्र आंकती रही।

रात कट गई सुबह सुबह रामदास सेठ के बड़े शहर का डक्टर आया। दिन भर के परीक्षण और इलाज के बाद डाक्टर को सफलता मिली। शाम को जीवन ने आँखें खोली डाक्टर ने दवाइयों की लम्बी सूची नीलिमा को दी। और साथ ही अपना बिल भी सामने रख दिया। बड़े मुनीम ने भी इन्जेक्शनस् दवाइयों आदि के बिलभी सामने धीरे से रख दिये। एकदम कागज के पांच पुर्जों की थप्पी देखकर नीलिमा का सारा नवोदित उल्लास क्षण मात्र में

कपूर हो गया। डाक्टर की फीस सहित चार बिलों का जोड़ ठीक पांच सौ रुपये था। एक माह के इलाज के लिये खरीदी जाने वाली पाँच दवाइयों के दाम अभी अज्ञात ही थे।

.. .. पांच सौ रुपये तो तत्काल ही चाहिये थे। नीलिमा ने मेज पर पड़ी दावात के नीचे पांचों पुरजे जमाकर रख दिये, और निःशब्द शून्य में देखती रही। डाक्टर ने कहा कि गाड़ी का वक्त हो गया है; और उसे अभी ही लौट जाना है। मुनीम ने भी स्वीकारोक्ति में सर हिला दिया। कमरे में सन्नाटा छागया जीवन में पर्याप्त चेतना लौट आई थी। उसने पलकें उघाड़ कर देखा कि सब लोग विचित्र मुखाकृतियां बनाये खड़े हैं। नीलिमा भी मुर्झाई लता सी, जैसे प्रखर धूप में जलती खड़ी है। उसने बिलों के पैसों के बारे में कुछ कहना चाहा। किन्तु बोल फूट न सका दरवाजे पर बूढ़े डाक्टर श्याम स्वरूप ने आवाज दी। लता सा नीलिमा को जैसे सावन की फुहार मिल गयी। उस समय शहर का डाक्टर चुरुट से धुंये के बादल उड़ा रहा था। और मुनीम चिमनी की धुंधली जोत में बिलों के जोड़ों को फिर से जांच रहा था। कमरे के विचित्र वातावरण को देखकर डाक्टर श्याम ने नीलिमा से पूछा नीलिमा ने साहस बटोर कर कहा 'चाचाजी! डाक्टर साहब और मुनीमजी इसी गाड़ी से लौट रहे हैं।......और ये बिल आदि.... डा श्याम ने झपट कर मुनीम के हाथों से सब बिल ले लिये। धागे बंधी टूटी सुनहरी फ्रेम के

रोटियों और लाशों के जुलूस

लेन्सेस में से घूरते हुए श्याम बाबू ने मुनीम से कहा, 'क्या तुम्हारी बुद्धि कुण्ठित हो गई है। दिन भर रहकर भी इस जर्जरित गृहस्थी को समझ पढ़ न सके।' चीज साफ खुल कर सामने आ पड़ी। मुनीम की नजरें नीची हो गईं। और शहराती डाक्टर सिगरेट का लम्बा कश खींच कर जूतों के फीते बांधने लगा। नीलिमा के चेहरे पर भी क्षण भर के लिये अरुणिमा उभर आई। मुनीम ने सहमते हुए कहा कि मालिक का आदेश था कि पैसों का हिसाब किताब तत्काल ही निपटा कर आना। डाक्टर श्याम को बरबस ही हंसी आ गई।

जीवन का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा। एक दिन जब वह थका मांदा स्कूल से पढ़ाकर घर आया तो देखा कि मां जीने से गिर अन्तिम श्वासें ले रही है। उसने कम्पित कंठ से 'मां' पुकारा। वृद्धा के ओंठ हिलते हिलते रह गये और लय विलय हो गई। अंधियारी दुर्गम मंजिल पर उसका साहस छूटगया और वह खूब रोया। .. मां की मृत्यु के बाद एक दिन जब पानी खूब बरस रहा था; और जीवन घर के एकाकी कोने में मां के अभिव्यापक दुलार के अमन्द सपनों को स्मृतियों में गूथ रहा था; डाकिये ने एक पत्र दिया। पत्र उसके ससुर के हस्ताक्षरों से अलंकृत था। उसके साथ ही पांचसो रुपये का वही हिसाब सविस्तार संलग्न था। पत्र में लिखा था कि यदि चार दिनों में पैसे नहीं चुकाये गये तो कानूनी कार्यवाही के साथ ही उन्हें निचले स्तर पर उतरना पड़ेगा।

[एकसौचार]

नीलिमा

जीवन के सपनों का क्षणिक सुख भी निमिष मात्र में बिखर गया।

आखिर नीलिमा से विदा लेकर जीवन बड़े शहर गया। जब वह रामदास की चमकती हवेली के पास पहुँचा तो उसके अन्तर में यकायक जैसे बवंडर उठ पड़ा। सड़क पर चलते हुए भी उसके ओंठ फरफरा रहे थे और वह शायद किसी व्यवस्था को चूर चूर कर डालने की बात सोचता चला जा रहा था। चमकती हवेली में उसे अपना उजड़ा दुलार, प्यार, स्वप्न और आशाएं सभी कुछ एक जगह केन्द्रित दृष्टिगोचर हुआ।.........उसने भीतर प्रवेश किया। नौकर के साथ वह उस सजे सजाये कमरे में पहुँचा, जहां रामदास सोफे पर लेटे हुए थे। जीवन ने अभिवादन किया। रामदास ने कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए पूछा – 'आपका स्वास्थ्य ठीक है न?' जीवन ने 'हां' की अभिव्यक्ति में सिर हिला दिया। 'और नीली भी?' जीवन ने फिर उसी तरह सिर हिला दिया। दो क्षण की शान्ति के बाद जीवन ने कहा कि वह कर्ज के शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने आया है क्योंकि वह अभी एक पाई भी नहीं चुका सकेगा। सेठ रामदास का रंग एक क्षण में ही बदल गया। उन्होंने अटेची में से लिखा लिखाया शर्तनामा निकाला और जीवन के सामने रख दिया जीवन ने कलम उठाई और बिना पढ़े ही हस्ताक्षर करना शुरू कर दिया। रामदास ने बीच ही में रोक कर कहा, 'जरा ब्याज की दर और दूसरी शर्तें ध्यान से पढ़ लीजिए' जीवन की नस नस

में जैसे आग लग गई। वह क्रोध से कांप उठा और उसके हाथ से क़लम छूट गई। उसने दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध कर दहाड़ते हुए कहा 'यदि पिस्तौल होती तो तुम्हारी रक्त पिपासा एक क्षण में ही बुझा देता।' रामदास भय से कांप उठे। जीवन की मुखाकृति से उन्हें लगा जैसे महामृत्यु साकार होकर उनके समक्ष आ खड़ी हुई है। वे चिल्लाये, 'दौड़ो दौड़ो मुझे मार डाला।' उनके नौकर, चाकर, मुनीम, लड़के सभी लोग एकत्रित हो गये। जीवन उसी तरह सुर्ख आंखे लिये खड़ा रहा। रामदास सोफे पर लेटे लेटे चिल्लाते ही रहे।

लोगों ने बड़ी बहादुरी के साथ जीवन को कस कर बांध लिया और पुलिस के सुपुर्द कर दिया।

कई दिनों तक मुकदमा चलता रहा। आखिर रामदास के चतुर वकीलों ने यह सिद्ध कर दिया कि जीवन के पास पिस्तौल थी और उसने रामदास को मार डालने का पूरा प्रयत्न भी किया। सबूत में पोलिस ने एक पिस्तौल भी न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत की। अंत में फैसला सुना दिया गया और उसे २ वर्ष के कठिन कारावास की सजा दे दी गई। नीलिमा और बूढ़ा डाक्टर श्याम भीगीं हुई आंखों से जीवन को देखते रहे। मुरझाये जीवन की धंसी हुई लाल आंखों में शोले जल रहे थे। वह सिपाही के साथ बेड़ियां खनखनाता हुआ नीलिमा के पास आया और प्रकम्पित ओठों पर विद्रोह को तौलते हुए उसने कहा, 'नीलू तुमने मुझे अपार साहस प्रदान किया है। योद्धा किसी

दिन विष खाकर मत मर जाना। नीलिमा जैसे सब कुछ समझ गई। उसने आंचल से आंसू पोंछे और जीवन के चरणों में झुक गई। डाक्टर श्याम अचम्भित देखते रहे।

शाम पड़ते ही सेठ रामदास की हवेली नित्य की भांति दमक उठी। रामदास अपने कमरे में आदमकद दर्पण के सामने लाल प्याले की द्युति देख देख कर और पी पी कर झूम रहे थे। वे अभी इतनी नहीं पी चुके थे कि मदहोश हो जाते। उन्होंने दर्पण में देखा कि कोई उनके पीछे आकर खड़ा हो गया है। उन्होंने फिर पलटकर देखा कि घनी मुक्त केशराशि कंधो पर फैलाये नीलिमा दमकती आंखे लिये खड़ी है। प्याले को मेज पर रख कर वे कुछ क्षणों तक आश्चर्य पूर्वक नीलिमा को देखते रहे। वे एक बारगी भय से कांप गये। वे कुछ बोलें इसके पहले ही नीलिमा ने एक पर्चा उन्हें दे दी।

पर्चो में लाल अक्षरों से लिखा था, 'क्रान्ति की प्रथम रक्तिम किरण।' रामदास ने पर्चो से दृष्टि हटाकर ज्योंही नीलिमा की ओर आंखे उठाईं, तो उन्होंने देखा कि उनकी बेटी नीली उनकी ओर पिस्तौल का निशाना ताने खड़ी है। मृत्यु की सारी विभीषिका उनके चेहरे पर उभर आई। वे दर्पण से टिक कर थरथराने लगे। क्षण भर बाद कांपती आवाज में वे चिल्ला उठे; 'नीली... क्या पागल हो गई है री नीली......? नीलिमा ने पिस्तौल वाला हाथ नीचे

[एकसौसात]

डाल लिया; और टकटकी लगाकर बाप को देखने लगी। ......शायद फिर वह कहना चाहती थी कि उसे लाज आती है कि बाप और बेटी में प्रवाहित होने वाले एक ही रक्त का अधिकांश हिस्सा शोषण का काम करे......! किन्तु बोल फूटें इसके पहले ही रामदास पिस्तौल छीनने के लिये झपट पड़े। बिजली सी सतर्क नीलिमा पीछे हटी और दन् दन् दन् तीन गोलियां चलाकर पीछे वाली खिड़की से घने अंधकार में जाने कहां विलीन हो गई।

इन्सानियत की जड़ें

—※—

सांझ ने जूड़ा छोड़ दिया और चारों ओर से अंधियारी सघन हो आई। दिन के ज्वलन्त वैभव को आंचल में भर सन्ध्या रक्ताभ लहरों पर दिशि-दिशि फूल उठी। क्षितिज पर सांझ के कौमार्य की लहराती लाली, अलसित-अर्ध मीलित आंखों के कजरारे किनारों को चूमती हुई सी, वृक्षों की अवहेलित अलकों के नीचे धीरे धीरे बेसुध होने लगी।......दीपक जल आये। चारों ओर छल पूर्ण नव-चेतना थिरकने लगी। ऊंची ऊंची अट्टालिकायें भभक उठीं और छोटे छोटे घर मिट्टी के दीयों से जगमगा उठे। यह दीपावली की यौवनमयी रात थी। आज कुंआरी सांझ रूपमयी रजनी बनकर यौवन की समस्त उल्लसित लहरों पर मुस्करा उठी। सो वह उभार की रात थी, और अमानवीय दुनियां, कातिल के क्रूर अट्टहास सी, शोषण की इस उपक्रमणिका पर झूम उठी थी। मैं चलता आ रहा था। बड़ी बड़ी सड़कें, राज—पथ, चौराहे, गलियां आदि पार करता हुआ मैं घर लौट रहा था। हारा मुरझाया थकान में चूर चूर लड़खड़ाता, रस देकर मैं अपने सुबह से छोड़े हुए बच्चों में आ मिलने के लिये जल्दी जल्दी पैर उठाने का प्रयत्न कर रहा था। नगरी में ऐसा प्रकाश चैतन्य हो रहा

था मानो अब अंधकार कहीं शेष रह ही न गया हो। घर पास पास आता जा रहा था। पान वाले के चौराहे से जैसे ही मैं अपने मुहल्ले की सड़क पर मुड़ा कि अपार जन समुदाय मुझे तूफानी समुद्र की तरह लहराता दीखने लगा। मेरे मन में कुछ चल रहा था। अन्तर के निबिड़ अंधकार से पूर्ण एक निर्जन नीरव में जिस झूले पर अपने मन को लोरियां गा कर मैं सुलाता चला आ रहा था, उस हिंडोले को जैसे किसी ने झकझोर दिया। अजीब शोर-गुल कानों पर पछाड़े मारने लगा। मैंने जल्दी जल्दी पैर उठाये। नगर सेठ की हवेली अगणित बिजलियों की चिनगारियों में जैसे धक-धक जल रही थी और उस प्रखर प्रकाश के नीचे धक्का-धूमी की धमा चौकड़ी मची हुई थी, बड़ी भीड़ थी। तरह तरह की बातें चल रही थी। लोगों के छोटे छोटे झुंड के झुंड 'अपराधी कौन' की निर्णयात्मक चर्चायें कर रहे थे। बड़े हुजूम के बीच में चमकती मोटर खड़ी थी और आस पास खाकी पोशाक वाले अफसर सर गर्मी दिखा रहे थे। इधर उधर की बातो के टुकड़े जोड़कर मैंने मालूम किया कि उस रौबीली कार से एक भिखारिन का बच्चा कुचल कर मर गया है। मैं हतप्रभ खड़ा रहा। एक अरुणाई भरे तरुण ने चिल्ला कर कहा, 'बहुत बड़ा काम हुआ है हिन्दुस्तान से एक भिखारी कम होगया। कुछ लोग हंसे और कुछ उसे घूरने लगे। भिखारिन की चीख स्पष्ट उठने लगी और दीपावली की बिजलियां मौन मुस्कराने लगीं। मैं आगे बढ़ गया। घर नजदीक था। सुमति बालकनी के रेलिंग पर झुकी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

सामने की मंजिलों से प्रकाश का ऐसा तीव्र प्रवाह आ रहा था कि मैं अपनी सुमति को आज सड़क से ही देखने में समर्थ हो सका। मेरे मानस में तूफानी तरंगे उठ रही थीं। जीना चढ़ते चढ़ते भी मुझे यह विचार कचोट रहा था कि यह कैसा 'जीना'! मरना अच्छा कि मानवता का यह पतन मैं देख न सकूँ। किन्तु 'जीने' की अंतिम सीढ़ी पर मुझे जैसे किस ने झकझोरा। मैं क्षण भर ठिठका। आग सा बलबलाता विचार का एक शोला आया। उसने कहा, 'मरना कैसा? मरण क्यों! जीने की इतनी सीढ़ियां पार करने के बाद मरण क्यों याद आया? कलम पकड़ने वाली तुम्हारी इन नाजुक उंगलियों में अट्टालिकायें धराशायी कर देने की महान शक्ति है। मुझमें जैसे नव जागरण आ गया। सामने सुमति खड़ी थी। वह मुझे इतनी देर हो जाने का कारण पूछने लगी। मैं चुप रहा। टूटी बेन्च पर सुस्ताने के लिये मैं जरा लेट गया। मुझे चारों ओर से जैसे तपन लग रही थी। सुमति के पास खड़ा ज्वार की छोटी सी पहाड़ी पर मेरी देव बाला दाने उछाल उछाल कर खेल रही थी और उससे बड़ी छह वर्ष का प्रतिमा लकड़ी की मोटर को पत्थर की चोटों से तोड़ रही थी। मैंने झुंझला कर प्रतिमा के हाथों से मोटर का खिलौना छीन लिया। वह मचल गई। कहने लगी 'बाबूजी मुझे दे दो मैं इस मोटर को तोड़ूंगी।' मैंने कहा क्यों? वह अपनी नाजुक उंगलियों को मेरे सर के बालों में चला कर बोली देखो न! मोटर वाले तो बच्चों को मार डालते हैं अभी अभी मोटरवाले ने गज्जू को मार डाला है। मैं

चौंक उठा। अरे गज्जू......उस अंधी भिखारिन का बेटा गज्जू, जिसे प्रतिमा रोज एक रोटी देती है? कैसा प्यारा बच्चा था! उन्नत ललाट, कजरारी आँखे और घुंघरवाले बाल, मेरी निगाहों में घूम गये। सुमति ने कहा 'देखोजी मुन्नी ने उस बेचारे के लिये कब से देहरी पर रोटी रख छोड़ी है' मैंने देखा रोटी रखी है और जैसे गज्जू की प्रतीक्षा कर रही है। दो क्षण का सन्नाटा व्याप गया। सुमति की जल से भरी आंखें गज्जू की रोटी को अपलक देखती रही। प्रतिमा ने फिर खट खट मोटर तोड़ना शुरु कर दिया। सुमति ने आंखे पोंछ कर पूछा कि आज मुझे दफ्तर से लौटने में इतनी देर क्यों हो गई? मैंने कहा कि आज दफ्तर में बहुत ज्यादा काम था। "आखिर इस घुटती हुई जिन्दगी का क्या मतलब है? गृहस्थी, संसार, बच्चे, प्यार, दुलार, ममता इन सबसे निरीह होकर अपन आप को क्या यों ही बुझा देना होगा'? सुमति ने छल-छलायी आंखों से प्रश्न किया। मैंने कहा जिन्दगी में काम का महत्व है। 'काम अधिक और आराम कम' यही इस पीढ़ी का सर्वोत्तम भौतिक जीवन है। सुमति ने तपाक से पूछा, 'और रोटी?" मैंने कहा; रोटी की समस्या तो एक विदेशी वैज्ञानिक ने हल कर दी है। उसने एक ऐसी वस्तु तैयार की है जिससे चीथड़ों और कागजों को भी सुस्वादु भोजन में बदला जा सकता है। मैंने चित्र देखा है। चित्र में वैज्ञानिक स्वयं अपनी टोप [Hat] के टुकड़े खा रहा है। उसने लिखा है कि इस भोजन से मनुष्य को सम्पूर्ण संतोष प्राप्त हो सकता है। सुमति विस्फारित आंखों से

मुझे देखने लगी। मैंने एक क्षण का विराम लगाया। दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि सुमति भरी-भरी आंखों से सामने की अट्टालिका पर हंसती हुई हरी लाल बिजलियों की दीपावलि देख रही है। मैं उठा और बालकनी के रेलिंग पर झुककर उस विशाल दमकती हवेली की झिलमिलाहट में गज्जू का मरण मेला देखने लगा। इतने शोरगुल के बाद भी भिखारिन की हृदय द्रावक चीख मेरे कानों पर टकरा उठती थी। मेरी भूख उड़ गई। मैं जीना उतर कर फिर घटना स्थल की ओर दौड़ गया। भीड़ को किसी तरह चीरकर मैं सबसे आगे पहुँच गया। मोटर के पास गज्जू की लाश बेतरतीब पड़ी थी और भिखारिन औंधे मुंह धरती पर पड़ी आज की इन्सानियत की जड़े खोज रही थी। मैं बुझा बुझा घर लौट आया। दरवाजे की देहरी पर गज्जू के हिस्से की रोटी अब भी उसी तरह पड़ी हुई थी। प्रतिमा ने पूछा, 'बाबूजी ! गजजू अब अच्छा हो गया ?' मेरी आंखों के छलकते आंसू ढुलक पड़े, और सुमति मुंह छुपा कर रो पड़ी।

ज्वालाओं में…………!

यह सन ४७ का अगस्त का महिना है। तारीख नौ है। प्रभात फूट रहा है। सरिता की आंखे उघड़ पड़ी है। द्वार की देहरी पर धुंधला प्रकाश चरण चरण आ रहा है। दूर सामंती महल से भैरवी के स्वर बिखर रहे हैं। सरिता की मांग का सिन्दूर रक्तिम विद्युत शलाखा की तरह धुंधले प्रकाश से प्राणमय हो उठा है। क्रान्ति का प्रभात, प्राणों का रस मय मधुर सवेरा डंके की चोट आ रहा है। सामंती महल से नगाड़े गड़ गड़ा रहे हैं। पांच दिन बाद पन्द्रह अगस्त है देश बन्धनों से पार हो रहा है इन दिनों जन जन के मन प्राणों में उत्फुल्लता लहर आई है। नव स्वतंत्रता आ रही है। झोपड़ों के प्रकम्पित दीप बुझते २ रुक गये हैं। जीवन का नया संगीत सागरों पार धीमा धीमा सुनाइ पड़ रहा हैं। लार्ड माउन्टबेटन का केलेण्डर चर्र चर्र फट रहा है, तारीखें लुढ़क रही हैं। शायद सच ही देश का मुक्ति दिवस निकट आ रहा है। माउण्टबेटन का केलेण्डर ही आशा का धुंधला केन्द्र बन रहा है। उदास यूनियन जेक बेचैन सा फहर रहा है। लगता है अंग्रेजी साम्राज्य के बन्धन शिथिल हो रहे हैं। हाट बाट विश्वास तिल मिला रहा है। टोल के टोल लोग घूम रहे हैं। अरिस्टोक्रेट

'प्रोफेसर, 'रायबहादुर, पी. डबल्यू डी के इन्जीनियर, सरकारी मोदी, सरकारी आर्टिस्ट और डाक बंगले का बावर्ची; एक स्वर से जनता में विश्वास भर रहे हैं कि यह तो केवल अंग्रेजों की चाल है। हिन्दुस्तान को वे नहीं छोड़ सकते। यदि छोड़ भी दिया तो, एक बड़ी काली अंधियारी के बाद फिर उनका राज्य होगा। 'इफर्स' के हाथों राजनीति का खिलाड़ी नहीं खेल सकता। यह कोरा नाटक है बाबा, हजारों फांसी पर लटका दिये; हजारों लाखों और लटका दिये जायेंगे। ... .चौराहों पर भीड़ लग जाती है। यदि एक तरुण ने विलक्षण तर्क सामने रख दिया है, तो चार जनों की भीड़ दस जनों में बदल गई। 'हाकर' किसी दैनिक का 'स्पेशल अंक' लेकर दौड़ निकला है, तो भीड़ बिखर कर बड़ा शीर्षक सुनने के लिये झपट पड़ी है। ऐसा लगता है मानों वह'हाकर लड़का'सीधे ब्रिटिश पार्लमेंट की आत्मा से सत्य खोज कर वह निकला हो। कहीं वह रुक गया है तो पचासों ने उसे घेर लिया है, 'क्योंरे क्या तार है ?... .. .. अच्छा तो वाइसराय की बड़ी इमारत पर इक्कीस तोपें एकदम चढ़ा दी गई हैं? वाह...... भई वाह... .... हां यह बात है? वहां से जो तोपें छूटेंगीं उनका घोष दुनियां के कोने कोने में पहुँचाया जायगा? .... वाह रे अंग्रेज ! दुनियां में, अपनी ईमानदारी का सबूत विज्ञान से प्रसारित करेगा .... भई खूब! हाकर लड़का इगलैंड के बादशाह तक की घरू बातें करने लगा है। लोगों की भीड़ बढ़ रही है। यकायक जब लड़के का हाथ अखबारों के मोटे पुलिंदे पर पड़ता है

तो तड़प उठता है। राजनीति के इस भेद भरे भाषण में वह 'स्पेशल अंक बहुत कम बेच पाया है। अब उसकी रोटी का क्या होगा? मां को कहकर आया है कि आज यदि वह तीन आने पैसे कमाकर ले आया तो गेहूँ की आधी रोटी पर अपने अधिकार की घोषणा फिर कर देगा। एक दिन की आधी रोटी पहिले से ही चढ़ी हुई है। उस दिन भी उसने शानदार कमाई की था।...सो आज शाम को पूरी रोटी मां की डायरी में जमा हो जायगी। पश्चात कयामत के आसपास किसी दिन एक ऐसा सुनहरा प्यारा दिन आवेगा, जिस दिन अपने हिस्से की भरपेट रोटियों से भरी पूरी थाली में वह आजादी के तराने गाता हुआ सुस्वादु भोजन करेगा ...... सो हाकर ने यह सुनहला सपना कल्पना में देखा और बेहताशा भागा। वह बड़ा शीर्षक चीखता चला जा रहा है .... .. इतने में ही शहर के प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता का नौकर साइकिल से झपटता हुआ निकल पड़ता है, तो लोग उससे भी स्वराज की भीतरी खबर पाने के इच्छुक हैं। मोड़ पर किसी जगह वह रुक गया है तो लोग टूट पड़े हैं। यदि उसकी आंखों में आंसू हैं और उसने कहा कि माँ मर गई है, कफन लेने जा रहा हूँ तो फिर उसका मार्ग साफ है, विस्तीर्ण है, प्रशस्त हैं। अब उसे कोई छूना नहीं चाहता; वह जा सकता है। देश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। मां उसकी है, लोगों की नहीं। वह चला ... अब उसे कोई कुछ भी पूछना नहीं चाहता। किल बिलाते कीड़े की तरह वह रेंग गया। .... सो पन्द्रह अगस्त के कई दिन पहले

से यह सब चल रहा है। आज नौ अगस्त है। हिमालय के उन्नत ललाट पर धुंधला प्रभात उतर रहा होगा। अभी अभी सुनहली किरणें क्रान्ति का इतिहास लेकर उतरेंगीं और देश के दीवानों की उन सब मूक समाधियों पर पीताम्बर सी बिखर जायेंगीं........ सो सरिता के घर आंगन में भी चुपचाप प्रकाश झांक रहा है। प्रशांत की बेड़ियां आज कटने वाली हैं। वह सन् ४२ की अगस्त क्रान्ति में बंदी बनाया गया था। ढेर भर पुस्तकें उसने लिखी हैं। उन दिनों उन पुस्तकों की ज्वालावें चारों ओर फैल गईं तो ब्रिटिश सम्राट का वह दुश्मन घोषित कर दिया गया, और अनगिनत वर्षों के लिये यातनाओं की बड़ी फौजी जेल में भेज दिया गया। हिन्दुस्तानी सिपाहियों के बीच उसके गीत बह निकले थे। कौन जाने किस दिन महासागर की तरह वे गीत महा गर्जन कर उठते और सम्पूर्ण अंग्रेजी शासन को बहाकर मिटा देते।

. सो आंसुओं की रात सम्पूर्ण ढल गई और किरणें सरिता के आंगन में थिरकने लगीं। सरिता जेल की ओर चल पड़ी। मन में पूजा के गीत चल रहे हैं। ओठों की फड़फड़ाहट के साथ जो आंसू उमड़ आते हैं उन्हें सरिता आंचल म पोंछ लेती है। मन प्राणों में रमने वाला प्रशांत आज सरिता की आंखों में आने वाला है! वह चली जा रही है। शांत सरिता की तरह सागर से मिलने चली जा रही है। अब वह डामर की काली काली सड़क पर चल रही है। उसे दूर से जेल की दैत्याकार दीवारें दीख रही हैं। यह है फौजी जेल। जेल के पक्के परकोटे से पास

गज दूर वाले कच्चे परकोटे पर भी फौजी सिपाही का पहरा लगा हुआ है। सरिता सहमी सी एक ओर खड़ी हो गई। दो दूसरी काली-कलूटी मैली युवतियां भी सामने झाड़ के नीचे पथराई आंखें लेकर खड़ी हैं। सरिता भी वहीं चली गई। पूछने पर वह जान पाई कि उनके भरतार भी आज जेल से छूटने वाले हैं। एक का अपराध था रेलगाड़ी की पटरियां उखाड़ने का और दूसरे का अपराध था दस किसानों को गोलियों से उड़ा देने वाले टामी को मार डालने का। टामी का खून करने वाले को पहले फांसी की सजा हुई थी किन्तु बाद में न जाने कैसे वह सजा बदल दी गई। फांसी कहते ही उस ममतामयी की आंखें छल-छला आई। सरिता को भी जैसे शून्य में सहस्रों सर फांसी के फंदों में तिल मिलाते दीख गये। वह चीख उठी। जैल के फाटक पर चहल पहल बढ़ गई। बेड़ियों की खनन् खनन् सुनाई पड़ने लगी। बगीचों में काम करने वाले कैदी सिपाहियों के साथ आने जाने लगे। धूप प्रखर हो गई। क्षण बीते, दूर जैल से जय-जय की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। लोगों की भीड़ बढ़ गई। सरिता निर्निमेष देख रही है। कई लोग गलबांहियां डाल कर, हंसते हंसते बाहर आ रहे हैं। पैरों पर पड़े निशानों और पिचके गालों से पता चल रहा है कि ये सब लम्बी यातनायें सहने के बाद छूट कर आ रहे हैं। सरिता अधीरता से प्रतीक्षा कर रही है। प्रशांत नहीं दीख रहा है। उसने जैल से छूटने की तारीख फिर स्मरण की। नौ अगस्त है। हां उसे याद है, यही दिन है। आज ही प्रशांत का मुक्ति दिवस है, आज ही क्रान्त

की सालगिरह है। धूप चढ़ रही है। लोगों का आवा-गमन भी कम हो चला है। झाड़ के नीचे वे तीनों निविड़ अंधकार सी कान्ति हीन बैठी है। जेल के फाटक पर दृष्टि गड़ाये अपनी २ तरल जिन्दगियों का नाप तौल कर रही हैं। आशा टूट रही है, विश्वास थक रहा है और मन मर रहा है। धूप यकायक फीकी पड़ गई। गगन में पानी के सघन बादल घुमड़ आये। दुनियां बदल सी गई। काली घटायें चढ़ी चली आ रही हैं। और अब तो पानी की झड़ी झाड़ की पत्तियों पर झम झमा उठी हैं। लोग आसरे की खोज में भाग रहे हैं। इसी झाड़ के नीचे कई लोग आ डटे हैं। वे तीनों बरसती बरसात के उस पार दूर तक आंखें बिछाये झाड़ के तने के साथ दुबकी खड़ी हैं। पानी बढ़ गया। और आंधी भी चल पड़ी है। झाड़ सी सी सन सना उठा है। उसका विदीर्ण शरीर कपकंपा उठा है। तूफान की गति बढ़ चली। मकानों के छप्पर उड़ चले और गड़गड़ाते बादलों के साथ बिजलियां चम चमा उठीं। तूफान दूना हो उठा है। देखते ही देखते धरती से चिपकी जड़ें तड़ तड़ा उठीं और विशाल वृक्ष धमाके के साथ धरा-शायी हो गया। तहलका मच गया, किन्तु इन तूफानी क्षणों में वहां कौन आता। पचासों प्राणी दब गये। तूफान थका और बादल छट गये! रुदन क्रन्दन से वातावरण भयानक हो उठा। लाशों की गिनती में तीन लाशें ऐसी थीं, जिनके नाते रिश्तेदार ढूंढे से भी नहीं मिले। जेल के भीतर फिर जय ध्वनि होने लगी। झुन्ड के झुन्ड पीले पीले मुरझाये लोग छूट कर बाहर आ रहे हैं। वे वर्षों बाद मनुष्यों की

दुनियां में आये हैं, इसलिये अपनों से प्यार पाने के लिये अपनी ढहती गृहस्थियों की ओर चल पड़े हैं। एक थका मांदा मुरझाया कैदी अभी अभी बाहर आया है। पांव लड़खड़ा रहे हैं, इसलिये फुटपाथ पर बैठ गया है। प्यासी आंखों से किसी को ढूंढ रहा है। उम्र तीस के आसपास है। आंखे गहरी और विचारशील हैं। उसे तीव्र ज्वर है और वह सर्दी से कांप रहा है। सामने होहल्ला चल रहा है। 'गिरे झाड़ के नीचे से जो जो लाश निकाली गई हैं' वे उसकी आंखों के सामने बिछा दी गई हैं। शोर गुल चल रहा है। लोगों से कहते सुना गया कि एक स्त्री नहीं पहिचानी जा रही है। उसके परिवार का पता नहीं चल रहा है। विक्षिप्त युवक ने दूर से देखा कि एक लाश सरकारी गाड़ी में चढ़ाई जा रही है। वह किसी तरह गिरता पड़ता गाड़ी के नजदीक आया, पुलिस अफसर से आज्ञा मांगी। आज्ञा मिल गई, तो वह लड़खड़ाता नीरव नारी के चरणों में खड़ा हो गया। वर्षों बाद वह देख रहा है, सरिता ही है। प्रशांत प्रस्तर मूर्ति सा खड़ा खड़ा देख रहा है। सूखी आखों में आंसू नहीं हैं। सरिता चिर निद्रा में सो रही है। उसकी मांग का सिन्दूर ललाट पर रोली रच गया है। कवि प्रशान्त निःशब्द है। पाषाण की तरह निष्पद है। यह है नौ अगस्त, क्रान्ति की सालगिरह।

सांझ डूब रही है। प्रशान्त श्मशान से लौट कर टूटे घर के आंगन में आया है। वह देख रहा है। खुशी की रात में जलाई गई दीप मालिका के दीये आँगन में बुझे पड़े हैं।

ज्वालाओं में......

द्वार की देहरी पर खड़े खड़े न जाने सरिता को वह अनन्त के किस अन्तराल में ढूंढ रहा है। उसकी देह तवे सी जल रही है। लम्बी दाढ़ी और सर के छितराये रुक्ष बालों में एक कंपन चल रही है। दो तीन मित्र उसे सान्त्वना के मधुर शब्द सुनाकर लौट गये हैं। क्रान्तिकारी कवि श्री प्रशान्तजी को देश श्रद्धा से झूम-झूम कर पढ़ता रहा है, किन्तु मनुष्य प्रशान्त को शायद कोई नहीं जानता। अखबारों मोटे अक्षरों में छापा था, "श्री प्रशान्तजी पाँच वर्षों के कठिन कारावास के बाद क्रान्ति की सालगिरह मनाने हमारे बीच आ रहे हैं।" .... और यह है अंधियारी कोठरी। प्रशान्त फटी गुदड़ी पर चित्त पड़ा है, बुझ रहा है। उसकी ढेर भर पुस्तकों का गट्ठर सामने बड़े आले में मकड़ी के जालों से घिरा पड़ा है। उस गट्ठर की पुस्तकों ने लड़ाई के मोर्चों पर बड़ी जंगी फौजों को बागी बना दिया था। ... .किंतु वे पुस्तकें आज सड़ रही हैं। प्रशान्त घुल रहा है। पन्द्रह अगस्त आ रही है। देश स्वतंत्र होने जा रहा है। अड़ोस पड़ोस के लोग कवि को रोटी दे जाते हैं। गाड़ी मंजिल चढ़ रही है। साँसों पर प्रशान्त पल रहा है, चल रहा है, रुक रहा है।..................

चौदहवीं अगस्त की साँझ डूब चुकी है। प्रशान्त के पड़ोसी मृदंग ले आये हैं और उसके दरवाजे पर सूर के पद गाने लगे हैं। मध्य रात्रि में देश स्वतंत्र हो रहा है, शहर गाँव जल रहे हैं।......लो बारह बज गये हैं। राजधानी में शंखनाद हो उठा है। और इस अंधियारी कोठरी

मैं प्रशान्त सासो के बंधान से फिसल पड़ा हूँ............
"यह है पन्द्रहवीं अगस्त का मदमस्त प्रभात। प्रशान्त के क्रान्तिकारी गीत रेडियो पर चल रहे हैं और सरिता की ढेर भर राख के पास स्वतंत्र देश का कवि प्रशान्त जल रहा है। अन्तिम इच्छा के अनुसार पड़ोस के लोगों ने उसकी चिता उसकी पुस्तकों से रची है। कवि और क्रान्ति दोनों ज्वालाओं में झुलस रहे है।

———————

लक्ष्मी

जब लक्ष्मी का नाम करण हुआ था, तब पड़ोस के बिगड़े रईस की रानी बहुत हँसी थी। हँसी इसलिये थी कि दो कौड़ी के मुनीम की लड़की का नाम लक्ष्मी कैसे हो सकता है! भले ही वह सुन्दर हो, किन्तु नाम से वह लक्ष्मी कैसे हो सकती है! धन और पूंजी की भावना अभिव्यक्त करने वाले नामों पर केवल उन्हीं लोगों का अधिकार है जो वास्तव में लक्ष्मीपति और वैभवशाली हों। तुच्छ मुनीम क़ी क्या अवकात है कि वह अपनी लड़की का नाम लक्ष्मी घोषित करे? सेठानी के मन में यह बात भी उपजी थी कि छोटे लोग बड़े उत्पाती हो चले हैं और उनकी उच्छृंखलता आसमान चूमने लगी है।......हाँ उसी दिन, जिस दिन मुनीम की लड़की का नाम लक्ष्मी रखा गया, सेठानीजी को रात भर सपने आते रहे। तीन बार दिवाला निकालने के बाद, बिगड़े रईस ने जो संपदा दाबदूबकर बना रक्खी थी वह सब सपनों में पिघल पिघलकर बहती हुई सी लगने लगी और ऐसा लगने लगा मानों सारे जवाहरात और मोती आसमान के तारों की तरह टूट टूटकर कहीं भाग रहे हों। मुनीम की घरवाली को आंत-

वेदना पहुँचाने के लिये सेठानी ने सैकड़ों सक्रीय प्रयत्न किये। "लक्ष्मी का बाना राजा के हाथी पर निकलेगा, लक्ष्मी की शादी में सूरत का बाजा आयेगा, लक्ष्मी का बाप चौरासी जिमायेगा"......इत्यादि। मुनीम की भोली घर-वाली हँसता रहती थी। सेठानी के मन का पाप गहराई से तीर छोड़ता था, किंतु लक्ष्मी की माँ इन तीरों से घायल होकर भी, दर्द को अपने रोज के व्यवहारों में प्रकट नहीं करती थी। हाँ कभी कभी निःश्वास छोड़कर सेठानी को यह उत्तर दे देती थी, 'हमारे ऐसे भाग कहाँ हैं?' यह छोटा सा निराशा भरा वाक्य सेठानी के कलेजे को थोड़ी बहुत ठण्डक पहुँचा देता था। वह समझ लेती थी कि उसके छोड़े हुये तीर एकदम बेनिशान नहीं गये हैं। लक्ष्मी की माँ के कलेजे का थोड़ा सा हिस्सा तो उसे खाने को मिल ही गया है। साथ ही आश्वासन भी मिला है कि मुनीम गुमाश्तों का वर्ग सम्पतिशालियों पर विजय नहीं पा सकेगा। मुनीम पीसता रहा है और हमेशा पिसता रहेगा।

.... सो यह बात तब की है जब लक्ष्मी का नामकरण हुआ था। चौदह वर्ष बीत चुके हैं। इन चौदह वर्षों में मुनीम की गृहस्थी में सूरजमुखी (आशावादी) परिवर्तन नहीं हुआ है। पश्चिमोन्मुखी परिवर्तन अवश्य हुआ है। उसकी गृहस्थी में तीन बच्चे और बढ़ गये हैं। वेतन में वृद्धि इस तरह हो गई है कि उसके काम के घंटे बढ़ गये हैं। अर्थात् उसका अब अधिक शोषण होने लगा है। पहिले केवल पसीना बहाना पड़ता था, अब खून भी देना पड़ता है। अब वह जीवित मुर्दा है। बच्चों की पढ़ाई की कोई

व्यवस्था नहीं है। घरवाली की धोतियाँ तार तार हो चली हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि लक्ष्मी ब्याह लायक हो चली है। सुविधाएं और जीवन की उत्फुल्लता छीनकर वेतन में वृद्धि कर देना मुनीमों और गुमाश्तों के साथ सबसे बड़ा धोखा है। यह रहस्य-यह षड़यंत्र लोग जान कर भी प्रकट करना नहीं चाहते। ऐसा लगता है, इस युग में इन्सानियत की बात कहने वाला खून और हत्या का अपराध करने वाले की तरह है। शायद उससे भी अधिक खतरनाक समझा जाता है।

.....सो लक्ष्मी के ब्याह की तिथि पास आ गई है। चौदह वर्ष के बाद पड़ोस की सेठानी के मन में चिन्ता का दूसरा अंकुर फूटने लगा है। उसने सुना है कि मोहनलाल मुनीम की लड़की लक्ष्मी, वास्तव में लक्ष्मी होने जा रही है। अपने रूप और माधुर्य के बल पर वह बड़े घराने की लक्ष्मी बनने जा रही है। उसने यह भी सुना है कि जिस लक्ष्मी पति ने उसे बहू बना लेने का आश्वासन दिया है, उसके घर में सुन्दर बहुओं को लाने की प्रथा है, भले ही वे गरीब घरानों की हों। ......सो सेठानी की चिन्ता का अंकुर बढ़ रहा है। उसे यह बात रहरहकर खा रही है कि मोहनलाल मुनीम की चीथड़े पहिनने वाली लड़की की शादी बड़े घराने में क्यों हो? वह बहुत डर रही है कि कहीं ऐसा न हो जाय कि उसके चौदह वर्ष पहिले के अभिशाप भरे शून्य वरदान शुद्ध वरदान हो जाएँ, और लक्ष्मी, लक्ष्मीवान् के घर चली जाय। मोहनलाल की

चिन्ताएँ भी रात दिन बढ़ती चली जा रही हैं, उसने बड़े आदमी से सम्बन्ध स्थापित करने का साहस तो किया है किन्तु उसके समकक्ष वह किस तरह खड़ा हो सकेगा। दूसरी चिन्ता है पैसे की तीसरी बड़ी चिन्ता, जो उसे रात-दिन खाये जा रही है, वह है बदनामी से बचने की। लोग-दुनियाँ कहेगी कि उसने बेटी को बेचा है।.........और सच ही पास की सेठानी ने मोहनलाल को लोगों की दृष्टि से गिराने के लिये यही हथियार पकड़ा है। उसने यह भी शुरू कर दिया है कि लक्ष्मी बदचलन है। इस तरह की खबरें लक्ष्मी के सुसराल भी पहुँचाई जा रही हैं।...... सो इस प्रकार पूँजीपति का पुरुष आर्थिक दृष्टि से और पूंजीपति की नारी सामाजिक दृष्टि से मध्यम श्रेणी को लत्तियां मार मार कर ध्वस्त कर देने में रात दिन व्यस्त है।

......लक्ष्मी बीमार हो चली है। पास-पड़ोस की औरतें काना फूसी करती हैं। उसका सौंदर्य उसका सबसे बड़ा पाप हो चला है। सेठानी के बिखराये विष-परमाणु बराबर अपना काम कर रहे हैं। ब्याह की तीथि पास आ रही है। सेठानी भी उसासें भर रही है। वह अपनी बिखेरी हुई माया का परिणाम देखने के लिये आकुल-व्याकुल हो रही है। मोहनलाल मुनीम जैसे ज्वालाओं के बीच खड़ा है।......कर्ज ले रहा है, बड़े लोगों के स्वागत की तैयारियाँ कर रहा है और ज्वर पीड़ित लक्ष्मी को कीमती दवाइयाँ भी पिला रहा है। लक्ष्मी का ज्वर तो पराकाष्ठा पर है। ब्याह की तिथि बहुत नजदीक है। सेठानी मन-

भायी मंजिल तक पहुँचने के लिये उसी तरह बेचैन है।
......सो वह बात किसी तरह भी पूरी हुई। लक्ष्मी का ज्वर एक दिन सम्पूर्ण उतर गया......हाँ हमेशा के लिये।
......मोहनलाल मूर्छित होकर गिर पड़ा। माँ लक्ष्मी को विस्फारित आँखों से देखती रह गई और सेठानी पास की औरतों को आँसू दिखा दिखाकर नकली सहानुभूति के बोल बोलने लगी......कोई माने या न माने सेठानी की यह अद्भुत सामाजिक विजय थी। मेरी पत्नी यह बात नहीं मानती। वह कहती है कि जब लक्ष्मी की लाश उठी, तो उसे ऐसा लगा मानों आज की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर किसी ने दन् से एक जोर का हथौड़ा मारा हो। मुझे उसकी बात सोलहों आने ठीक लगती है।

हमारे प्रकाशन

- रोटियों और लाशों के जुलूस
  कहानी संग्रह (तैयार)
- मानवता सूली पर
  लघुकथा संग्रह
- आंसुओं का देश
  एकांकी संग्रह
- मौत की छाया
  उपन्यास

प्रकाशक
प्रीतम प्रकाशन गृह
२६ इमलारिया, इन्दौर